



मजदूर बिगुल

बेहिसाब बढ़ती आर्थिक और सामाजिक असमानता **7**

भीमा कोरेगाँव की घटनाएँ और जाति अन्त की परियोजना **11-13**

यमन संकट और अन्तरराष्ट्रीय मीडिया की साज़िश चुप्पी **10**

फ़्रासीवाद के धुँआसे के बीच गुज़रा एक और साल

नये साल में मजदूर वर्ग के सामने खड़ा चुनौतियों का पहाड़

नये साल में आम तौर पर शुभकामनाएँ दी जाती हैं। लेकिन 'मजदूर बिगुल' के पाठकों को जैसे ही हम नये साल की शुभकामनाएँ देने को अग्रसर होते हैं, वैसे ही हमारी आँखों के सामने से गोरखपुर के सरकारी अस्पताल के उन बच्चों की नन्हीं लाशें गुजरती हैं जो ऑक्सीजन की कमी की वजह से इस नये साल को देखने से वंचित रह गये। हमें झारखण्ड के सिमडेगा ज़िले की 11 वर्षीय बच्ची सन्तोषी कुमारी की मार्मिक चीखें सुनायी पड़ती हैं जो आधार कार्ड न होने की वजह से भात-भात कहते हुए इस दुनिया से चल बसी। हमें राजसमन्द में एक फ़्रासिस्ट दरिन्दे के हाथों मरने वाले मुसलमान दिहाड़ी मजदूर की चीत्कार भी सुनायी पड़ती हैं। हमें लुधियाना में एक फ़ैक्टरी की ढही इमारत के मलबे में धँसे मजदूरों की बेजान शक्लें याद आती हैं। हमें याद

आते हैं उन दर्जनों निस्सहाय लोगों के चेहरे जो मुम्बई के एलफिंस्टोन रेलवे स्टेशन में हुई भगदड़ में फँस गये थे। हमें याद आती हैं धर्म की आड़ में चल रहे बाबाओं के धिनौने धन्धों की शिकार मासूम माहिलाएँ! हमें फ़िलिस्तीन के उन जाँबाज किशोर-किशोरियों की बेबसी भी महसूस होती है जिनकी नौजवानी की दहलीज़ ज़ायनवादी ज़ालिमों की सलाखों के पीछे कैद हो गयीं। ऐसे में नये साल के मौके पर शुभकामनाएँ देने की औपचारिकता निभाने की बजाय हमें ज़्यादा मुनासिब यह लगता है कि हम बात करें चुनौतियों के उस पहाड़ की जिसकी उँचाई समय बीतने की साथ बढ़ती ही जा रही है; और हम बात करें उन रणनीतियों की जिनके ज़रिये चुनौतियों के इस पहाड़ को लाँघा जा सकता है। लेकिन आइए पहले गुज़रे साल देश और दुनिया में हुए

सम्पादक मण्डल

अहम घटनाक्रमों पर एक सरसरी नज़र दौड़ा ली जाये।

राष्ट्रीय पटल पर बीते साल के अहम घटनाक्रम

वर्ष 2017 में फ़्रासीवाद की उन्मादपूर्ण विजययात्रा आम जनजीवन को रौंदते हुए आगे बढ़ी। पहले उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, गोवा, मणिपुर और फिर साल के अन्त में गुजरात व हिमाचल प्रदेश के विधानसभा चुनावों में भाजपा ने जीत हासिल की। इन जीतों के परिणामस्वरूप अब देश की 67.78 फ़ीसदी आबादी और 78.08 फ़ीसदी भू-क्षेत्र वाले 19 राज्यों में भाजपा और उसके सहयोगी दलों की सरकारें बन चुकी हैं। नोटबन्दी और जीएसटी जैसी घोर जनविरोधी नीतियों

और अर्थव्यवस्था की खस्ता हालत के बावजूद फ़्रासिस्टों की चुनावी जीत फ़्रासीवाद की गिरफ्त में आ चुके भारतीय समाज की त्रासद दास्तान तो बयान कर ही रही है, लेकिन साथ ही साथ इस प्रक्रिया में स्वतन्त्र और निष्पक्ष होने का दावा करने वाली भारत के बुर्जुआ लोकतन्त्र की तमाम संस्थाओं – न्यायपालिका, मीडिया, चुनाव आयोग, सिविल सोसाइटी आदि – का खोखलापन भी उजागर होता जा रहा है।

मुनाफ़े की गिरती दर से परेशान भारत के पूँजीपति वर्ग द्वारा प्रायोजित फ़्रासीवाद के इस उन्मादी विजय जुलूस में मध्य वर्ग के सफ़ेदपोशों से लेकर, छुट्टेभैया व्यापारियों, दलालों, सट्टेबाजों, कमीशनखोरों और गाँवों के कुलकों-फ़ार्मरों के साथ ही साथ मजदूर वर्ग के विमानवीकृत लम्पट हिस्से को साफ़ देखा जा सकता है। फ़्रासीवाद का यही

वह सामाजिक आधार है जिसमें से निकली भीड़ कभी अलवर में गौरक्षा के नाम पर पहलू खान को पीट-पीटकर मार देती है तो कभी ग़ज़ियाबाद-मथुरा शटल ट्रेन की सीट को लेकर हुए विवाद में जुनैद का कत्ल कर देती है। फ़्रासीवाद के इसी सामाजिक आधार से राजसमन्द में शम्भूनाथ जैसा दरिन्दा भी निकलता है जो लव जिहाद की अफ़वाह पर अफ़राजुल नामक दिहाड़ी मजदूर को कुल्हाड़ी से काटकर उसकी लाश को जलाता है और उसकी वीडियो सोशल मीडिया पर वायरल करता है। शम्भूनाथ के समर्थन में उदयपुर में उत्पात मचाते हुए अदालत पर भगवा पताका फहराने वाली उन्मादी भीड़ भी फ़्रासिस्टों के इसी सामाजिक आधार का हिस्सा है। और फ़्रासीवाद के इसी सामाजिक आधार से आते हैं वे लोग जिन्हें कटते और

(पेज 9 पर जारी)

न्यायिक व्यवस्था का संकट और फ़्रासिस्ट आतंक राज

सत्तारूढ़ फ़्रासिस्टों की आलमारी में छिपे कंकालों की खड़खड़ाहट तेज़ होती जा रही है

कविता कृष्णापल्लवी

नये साल के दूसरे ही शुक्रवार को सुप्रीम कोर्ट के चार वरिष्ठ न्यायाधीशों ने अचानक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाकर प्रधान न्यायाधीश दीपक मिश्र को लिखा एक पत्र जारी किया जिसमें उन्होंने कई गम्भीर आरोप लगाये थे। पत्र में इन न्यायमूर्तियों ने न्यायपालिका की संस्था को कमज़ोर करने का आरोप लगाते हुए कई सवाल उठाये थे। उनमें प्रमुख आरोप यह था कि काफ़ी समय से व्यापक प्रभाव डालने वाले महत्वपूर्ण मुक़दमे उनके जैसे वरिष्ठ जजों को दरकिनार करके कुछ

खास जजों की बेंच को ही दिये जा रहे हैं। हालाँकि पत्र में सीधे इसका जिक्र नहीं था लेकिन पत्रकारों के पूछने पर जजों ने इस बात पर हामी भरी कि इनमें भाजपा अध्यक्ष अमित शाह के मामले की सुनवाई कर रहे सीबीआई के विशेष जज ब्रजमोहन लोया की सन्दिग्ध मौत से जुड़ा मामला भी था।

इसके दो दिन बाद ही मुम्बई की एक बड़ी लॉ फ़र्म की ओर से जज लोया के कमउम्र बेटे की प्रेस कॉन्फ्रेंस आयोजित करायी गयी जिसमें डरे-सहमे बेटे ने कहा कि उसको अपने पिता की मौत पर कोई

शक नहीं है और उसकी जाँच की कोई ज़रूरत नहीं है। हालाँकि दो वर्ष पहले इसी बेटे ने पत्र लिखकर जाँच की माँग की थी। कुछ ही सप्ताह पहले जज लोया के पिता और बहन ने भी उनकी हत्या की आशंका जताते हुए जाँच की माँग उठायी थी। कोई भी समझ सकता था कि जज लोया के परिवार को डरा-धमका कर यह प्रेस कॉन्फ्रेंस करायी गयी है। वे कॉरपोरेट मंत्रालय के ऊँचे अधिकारी रहे बी.के. बंसल के हथ से भी परिचित रहे ही होंगे जिनके पूरे परिवार ने ही आत्महत्या कर ली थी। बंसल के

सुसाइड नोट में भी अमित शाह का नाम आया था लेकिन हुआ कुछ नहीं।

जैसा कि पिछले साढ़े तीन साल का चलन है, मोदी सरकार के सरपरस्त कॉरपोरेट घरानों का ज़रखरीद मीडिया इन घटनाओं से उठे असली सवालों को छिपाने के लिए तरह-तरह का फ़र्ज़ी शोर मचाने और बातों को घुमाने-फिराने में जुट गया। भाजपा आईटी सेल के चाकरों और भक्तों की मण्डली ने सोशल मीडिया पर भी झूठ-फ़रेब और कुतर्कों का धूल-गर्दा उड़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। लेकिन उनकी तमाम कोशिशों के

बावजूद लोगों के बीच यह बात चली गयी है कि कुछ तो गड़बड़ है। न्याय का मन्दिर, लोकतंत्र का तीसरा खम्भा, जनता की आखिरी उम्मीद आदि-आदि कहे जाने वाली न्यायपालिका में उपजे इतने गम्भीर संकट के बाद भी जनता इसे लेकर सड़कों पर क्यों नहीं उतर आयी, यह एक अलग सवाल है।

अभी यह सब चल ही रहा था कि 15 जनवरी को अचानक 'हिन्दू हृदय सम्राट', विश्व हिन्दू परिषद के अन्तरराष्ट्रीय कार्यकारी अध्यक्ष प्रवीण

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

ढण्डारी अपहरण, बलात्कार व क्रल काण्ड-2014 की पीड़िता शहनाज़ की तीसरी बरसी पर श्रद्धांजलि समागम

(पेज 5 से आगे)

2014 को अगवा करके दो दिन तक सामूहिक बलात्कार किया गया था। राजनीतिक सरपरस्ती में पलने वाले इस गुण्डा गिरोह के खिलाफ कार्रवाई करने में पुलिस ने बेहद ढिलाई बरती, पीड़ितों की ढंग से सुनवाई नहीं की गयी, रिपोर्ट लिखने और मेडिकल करवाने में देरी की गयी। बलात्कार व अगवा करने के दोषी 18 दिन बाद जमानत करवाने में कामयाब हो गये। गुण्डा गिरोह ने शहनाज़ और उसके परिवार को केस वापिस लेने के लिए डराया, जान से मारने की धमकियाँ दीं। 4 दिसम्बर को दिन-दिहाड़े सात गुण्डों ने उसे मिट्टी का

तेल डालकर जला दिया। 9 दिसम्बर को उसकी मौत हो गयी। गुण्डा गिरोह के इस अपराध व गुण्डा-सियासी-पुलिस-प्रशासनिक नापाक गँठजोड़ के खिलाफ हज़ारों लोगों द्वारा 'संघर्ष कमेटी' के नेतृत्व में विशाल जुझारू संघर्ष लड़ा गया था। जनदबाव के चलते दोषियों को सज़ा की उम्मीद बँधी हुई है। क्रल काण्ड के सात दोषी जेल में बन्द हैं। अदालत में केस चल रहा है। पुलिस द्वारा एफ़आईआर दर्ज करने में की गयी गड़बड़ियों के चलते अगवा व बलात्कार का एक दोषी जमानत पर आज़ाद घूम रहा है। इन बलात्कारियों व कातिलों को फाँसी की सज़ा के लिए

संघर्ष जारी रहेगा।

सभा को 'संघर्ष कमेटी' के संयोजक व कारखाना मज़दूर यूनियन के अध्यक्ष लखविन्दर; टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के अध्यक्ष राजविन्दर; स्त्री मज़दूर संगठन की बलजीत; मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्स यूनियन के अध्यक्ष हरजिन्दर सिंह, नौजवान भारत सभा के सतपाल व कर्मजीत, मज़दूर अधिकार संघर्ष अभियान के नेता सुरिन्दर सिंह, डेमोक्रेटिक लॉयर्स एसोसिएशन के नेता एडवोकेट हरप्रीत जीरख, शहनाज़ के पिता मुहम्मद इलियास, पीपुल्स मीडिया लिंक के रेक्टर कथूरिया आदि ने सम्बोधित किया।

लुधियाना पुलिस कमिशनरी में धरना-प्रदर्शनों पर पाबन्दी के खिलाफ़ व्यापक संघर्ष का ऐलान

(पेज 4 से आगे)

इस संघर्ष में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, कारखाना मज़दूर यूनियन, नौजवान भारत सभा, पेंडू मज़दूर यूनियन (मशाल), लाल झण्डा बजाज सन्स मज़दूर यूनियन, भारतीय किसान यूनियन (एकता-उगराहॉ), भारतीय किसान यूनियन (एकता-डकौदा), पेंडू मज़दूर यूनियन, जमहूरी अधिकार सभा, इंकलाबी लोक मोर्चा, सीटू, लाल झण्डा हीरो साइकिल मज़दूर

यूनियन, लाल झण्डा टेक्सटाइल हौज़री मज़दूर यूनियन, जमहूरी किसान सभा पंजाब, इंकलाबी नौजवान विद्यार्थी मंच, मज़दूर अधिकार संघर्ष अभियान, कामागाटा मारू यादगारी कमेटी, इंकलाबी केन्द्र पंजाब, मनरेगा मज़दूर यूनियन पंजाब, लाल झण्डा पंजाब भट्टा मज़दूर यूनियन, पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन, किरती किसान यूनियन, मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्स यूनियन, तर्कशील सोसाइटी पंजाब, मेडिकल प्रेक्टीशनर्स

एसोसिएशन, शहीद भगतसिंह नौजवान विचार मंच, डेमोक्रेटिक टीचर्स फ्रण्ट, डेमोक्रेटिक लायर्स एसोसिएशन, महासभा, पंजाब रोडवेज इम्पलाइज यूनियन, सफ़ाई लेबर यूनियन, पीपुल्स मीडिया लिंक, आँगनवाड़ी मुलाज़िम यूनियन, रेलवे पेंशनर्स एसोसिएशन, डिस्पोजल वर्कर्स यूनियन, लाल झण्डा पेंडू चौकीदार यूनियन, एटक, आज़ाद हिन्द निर्माण यूनियन पंजाब, आदि संगठन शामिल हैं।

पंजाब के 60 से अधिक जनवादी-जनसंगठनों ने काले क्रान्तियों के खिलाफ़ तालमेल फ्रण्ट बनाया

(पेज 4 से आगे)

कमेटी, क्रान्तिकारी किसान यूनियन पंजाब, ज़मीन प्राप्ति संघर्ष कमेटी, पेंडू मज़दूर यूनियन (मशाल), जमहूरी किसान सभा, पंजाब किसान यूनियन, पेंडू मज़दूर यूनियन पंजाब, पंजाब खेत मज़दूर यूनियन, क्रान्तिकारी पेंडू मज़दूर यूनियन, देहाती मज़दूर सभा, मज़दूर मुक्ति मोर्चा, इण्डियन फ़ेडरेशन ऑफ़ ट्रेड यूनियनज़ (इफ़टू), सीटीयू पंजाब, थर्मल कण्ट्रेक्ट वर्कर्स कोऑर्डिनेशन, मज़दूर अधिकार संघर्ष अभियान, मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्स यूनियन, थीम डैम वर्कर्स यूनियन, लाल झण्डा पंजाब भट्टा लेबर यूनियन, शहीद भगतसिंह

नौजवान सभा, पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन, पंजाब स्टूडेंट्स फ़ेडरेशन, डेमोक्रेटिक स्टूडेंट्स ऑर्गेनाइज़ेशन, इंकलाबी नौजवान विद्यार्थी मंच, पंजाब रोडवेज इम्पलाइज यूनियन (आज़ाद), गोरमिण्ट टीचर्स यूनियन, पंजाब सुबार्डीनेट सर्विसिज़ फ़ेडरेशन, डेमोक्रेटिक मुलाज़िम फ़ेडरेशन, आरसीएफ़, इम्पलाइज यूनियन (कपूरथला), टीएसयू (सेखों), एसएसए/रमसा अध्यापक यूनियन, जल सप्लाई व सेनीटेशन कण्ट्रेक्ट वर्कर्स यूनियन पंजाब, पेप्सीको इण्डिया होल्डिंग वर्कर यूनियन (एटक), ठेका मुलाज़िम संघर्ष मोर्चा, ठेका मुलाज़िम पावरकॉम व

ट्रांस्को यूनियन पंजाब, जनवादी स्त्री सभा, स्त्री जागृति मंच, पंजाब निर्माण मज़दूर यूनियन, आँगनवाड़ी वर्कर यूनियन, टेक्नीकल सर्विसिज़ यूनियन, जमहूरी अधिकार सभा, देश भगत यादगार हाल कमेटी, पंजाब लोक सभ्याचारक मंच, पंजाब मेडीकल प्रेक्टीशनर्स एसोसिएशन पंजाब आदि संगठन शामिल हैं। तालमेल फ्रण्ट के बाहर रह गये शेष जनवादी जनसंगठनों को भी काले क्रान्तियों के खिलाफ़ साँझे संघर्ष में बढ़चढ़कर शामिल होने की अपील की गयी है।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के जरिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टियों के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क्रतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।
5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना

डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul

खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200

पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकखर्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853093555, 9936650658

ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन: 8853093555

दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928

ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

मूल्य : एक प्रति - 5/- रुपये

वार्षिक - 70/- रुपये (डाक खर्च सहित)
आजीवन सदस्यता - 2000/- रुपये

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के ढम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार खुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" - लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं। मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'! इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव

आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:

डाक से भेजने का पता: मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

ईमेल से भेजने का पता: bigulakhbar@gmail.com

केजरीवाल सरकार के मज़दूर और गरीब विरोधी रवैये के खिलाफ़ आंगनवाड़ी महिलाकर्मियों ने उठायी आवाज़!

दिल्ली में पिछले दिनों हजारों आंगनवाड़ी कर्मियों की ऐतिहासिक हड़ताल हुई थी जिसकी रिपोर्टें मज़दूर बिगुल में भी छपती रही हैं। 60 दिन तक चली इस हड़ताल में संघर्षशील महिला कर्मियों ने अन्ततः केजरीवाल सरकार को घुटनों के बल ला दिया था। शुरू से ही यूनियन विरोधी रवैये को लागू करने वाली तथा यूनियन नेतृत्व को नकारने वाली दिल्ली सरकार को आखिरकार गजट आर्डर जारी कर मानदेय बढ़ोत्तरी की बात पुष्ट करनी पड़ी थी। गौरतलब है कि खुद को आम जनता का मुख्यमंत्री बताने वाले केजरीवाल ने यह आर्डर तभी जारी किया जब महिलाकर्मियों ने अपनी यूनियन 'दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एंड हेल्पर्स यूनियन' के नेतृत्व में 60 दिनों तक लगातार अपनी हड़ताल जारी रखी। इसके बाद केजरीवाल सरकार ने बड़ी बेशर्मी से सारा श्रेय अपनी झोली में डाल कर सोशल मीडिया व अन्य प्रचार माध्यमों से मानदेय बढ़ोत्तरी के लिए अपनी पीठ थपथपाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

लेकिन अब हाल में दिल्ली सरकार ने आंगनवाड़ी महिलाकर्मियों को प्रताड़ित करने के लिए आंगनवाड़ी परियोजना में छंटनी की प्रक्रिया शुरू कर दी है। हड़ताल के बाद से दिल्ली के करावल नगर, निजामुद्दीन, कल्याणपुरी, तिलक विहार, मंगलापुरी, सागरपुर, बदरपुर, डाबरी आदि प्रोजेक्टों में ऐसे मसले सामने आए हैं जहाँ बिना किसी वाजिब कारण के महिलाकर्मियों को निकाला जा रहा है तथा परेशान किया जा रहा है। यह साफ़ है कि सरकार निरीक्षण और सुधार के नाम पर अन्यायपूर्ण तरीके से आंगनवाड़ी महिलाकर्मियों को निकालने के बहाने तलाश रही है। केजरीवाल सरकार ने नयी जांच कमिटियों का निर्माण किया है जिसमें आम आदमी पार्टी के कार्यकर्ता बाक्यदा कमिटी के कर्ता-धर्ता बने घूम रहे हैं और इन जांच समितियों में आम जनता के प्रतिनिधि कहीं नज़र

नहीं आते। अब सवाल यह भी बनता है कि सरकारी काम में दखल देना किसी चुनावी पार्टी के कार्यकर्ता किस हैसियत से कर रहे हैं? वहीं आंगनवाड़ी में सुधार-कार्य के नाम पर जो निरीक्षण हो रहे हैं उनमें पहले यह सवाल क्यों



नहीं उठाया जाता कि आंगनवाड़ियों में जो सुविधा दी जाती है, जो खाना बाँटा जाता है उसकी गुणवत्ता का कोई मानक, कोई स्तर ही नहीं है। एक ओर केजरीवाल सरकार सर्दियों के मौसम के नाम पर स्कूलों को बंद कर रही है जबकि दूसरी ओर आंगनवाड़ी में 5 साल तक के बच्चों को बिना किसी इंतजाम के सुबह 9 बजे बुलाने के लिए मजबूर कर रही है। मसला यह भी है कि अगर जांच और 'चेकिंग' करनी ही है तो फिर इसकी शुरुआत इस योजना के कर्ता-धर्ताओं से होनी चाहिए, यानी कि, खुद मंत्री-महोदय के कार्यालय और इस स्कीम में लगे तमाम अफसर तथा खाना बनाने के काम में लगे एनजीओ से शुरू होनी चाहिए। जो मिलकर हर महीने करोड़ों के घपले-घोटाले करते हैं।

इस योजना में सबसे निचले पायदान पर कार्यरत कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं को बलि का बकरा

बनाकर केजरीवाल सरकार इस स्कीम में अपने द्वारा किये जा रहे भ्रष्टाचार पर पर्दा डालते हुए महिलाकर्मियों के कन्धों पर रख कर बन्दूक चला रही है। ये कोई छिपी हुई बात नहीं है कि इस योजना में लगे एनजीओ का, प्रत्यक्ष या परोक्ष

रूप से, आम आदमी पार्टी से सम्बन्ध है। खुद को आम आदमी का हिमायती कहने वाले केजरीवाल ने यह साबित कर दिया है कि उसकी सरकार के खिलाफ़ अगर आवाज़ उठाई जायेगी तो उस आवाज़ को दबाने के लिए वो किसी भी हद तक जा सकते हैं। हड़ताल के दौरान यूनियन को तोड़ने के प्रयास से लेकर हड़ताल के बाद महिलाकर्मियों पर दंडात्मक कारवाई करने तक कोई कसर नहीं छोड़ेगी।

ज्ञात हो कि आंगनवाड़ी योजना की शुरुआत 1975 में केंद्र सरकार द्वारा गरीब घरों की महिलाओं और बच्चों को पौष्टिक आहार और प्री-स्कूल की शिक्षा प्रदान करने के लिए की गई थी। हालांकि हम जानते हैं कि इस स्कीम के तहत मिलने वाला भोजन पौष्टिक तो दूर खाने लायक भी नहीं है। जो पैसा और संसाधन बच्चों-महिलाओं के भोजन तथा अन्य ज़रूरतों पर खर्च होना चाहिए

वो तो तमाम नेता-मंत्री-विधायकों की जेब में चला जाता है। साथ ही, इस योजना में लगे एनजीओ भी हर महीने करोड़ों डकार जाते हैं। दिल्ली में कांग्रेस के समय के भ्रष्टाचार में आम आदमी पार्टी की सरकार ने ज़बरदस्त इजाफ़ा किया है। पहले जो खाना मिलता था वह सूखा था तो बच्चे उसे खा भी लेते थे। लेकिन अब जो खाना बच्चों को परोसा जा रहा है वह तो जानवरों को भी नहीं दिया जा सकता। अरविन्द केजरीवाल और मनीष सिंसोदिया एक दिन यह खाना खुद खा लें तो इसकी असलीयत समझ जायेंगे!

आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं द्वारा जब कभी भी खाने की गुणवत्ता से लेकर संसाधनों की कमी के मामलों को विभाग के अधिकारियों के संज्ञान में लाया जाता है तो महिलाकर्मियों को नौकरी से निकल दिए जाने की धमकी दी जाती है। कई कार्यकर्ताओं व सहायिकाओं

को इस भ्रष्टाचार के खिलाफ़ आवाज़ उठाने के कारण काम से भी निकाल दिया गया है। मतलब साफ़ है, सरकार चाहती है कि वर्कर और हेल्पर चुपचाप तमाशाबीन बनी रहें और जब निरीक्षण की बारी आये तो बलि का बकरा इन्हें ही बना दिया जाए।

अन्त में छंटनी का यह मसला सिर्फ़ राज्य सरकार का नहीं, बल्कि केंद्र का भी इसमें बड़ा हाथ है। सरकार की पूरी कोशिश है कि इस योजना को बंद कर निजी हाथों में सौंप दिया जाए। मोदी सरकार की मजदूर-विरोधी नीतियाँ कोई नई बात नहीं है। भाजपा के सत्ता में आने के बाद से ही श्रम कानूनों में बड़े पैमाने में बदलाव किये गये हैं। और इसका असर आंगनवाड़ी से जुड़ी स्कीमों पर भी नज़र आने लगा है।

इन्हीं सब समस्याओं ले मद्देनज़र 'दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एंड हेल्पर्स यूनियन' की तरफ से 7 जनवरी

को यूनियन की आम बैठक और 10 जनवरी को 'आंगनवाड़ी जन-सुनवाई' का आयोजन किया गया। इन दोनों कार्यक्रमों में सामूहिक तौर पर तय की गयी योजना के अनुसार पर्चा निकाल कर केजरीवाल सरकार की इस मजदूर और गरीब जनता विरोधी नीति को दिल्ली भर की जनता के सामने बेनकाब करने का फैसला लिया गया था। जन-सुनवाई के दौरान वर्कर और हेल्पर को प्रताड़ित किये जाने के कई मसले सामने आये। यूनियन की तरफ से दिल्ली के अलग अलग इलाकों में इस प्रक्रिया के खिलाफ़ पर्चा निकाल कर आम जनता से अपील की गयी है कि इस फैसले के विरोध में वो भी साथ आये, क्योंकि आंगनवाड़ी परियोजना के बन्द होने का असर न सिर्फ़ महिलाकर्मियों और उनके परिवारों पर होगा, बल्कि उन बच्चों और महिलाओं पर भी होगा जो इस योजना के तहत आते हैं। 10 तारीख तो तय किये गये कार्यक्रम के अनुसार 15 जनवरी को दिल्ली सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग के सामने चेतावनी प्रदर्शन किया गया। यूनियन प्रतिनिधिमण्डल ने विभाग की निदेशिका के सामने कई मांगें रखीं। जिसके बाद विभाग ने एक महीने के अन्दर 'टर्मिनेट' की गयी महिलाकर्मियों के फाइलों की दोबारा जांच करने का, निरीक्षण की प्रक्रिया को ज्यादा पारदर्शी बनाने का आश्वासन दिया। प्रतिनिधि मण्डल ने यह भी मांग की कि महिलाकर्मियों को बेवजह तंग न किया जाये, जांच समितियों में आम आदमी पार्टी के कार्यकर्ताओं की दखलंदाजी बंद की जाए, तथा खराब गुणवत्ता के ज़िम्मेदार एन.जी.ओ. को दण्ड देते हुए बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण भोजन का इन्तजाम किया जाये। वर्ना केजरीवाल सरकार की साजिश को नाकाम करने के लिए आंगनवाड़ी कर्मी पुनः कमर कसने के लिए तैयार हैं।

- बिगुल संवाददाता, दिल्ली

"रामराज्य" में गाय के लिए बढ़िया एम्बुलेंस और जनता के लिए बुनियादी सुविधाओं तक का अकाल!

एक ओर लखनऊ में उपमुख्यमंत्री केशव प्रसाद मौर्य ने गाय "माता" के लिए सचल एम्बुलेंस का उद्घाटन किया तो दूसरी ओर राजस्थान सरकार ने अदालत में स्वीकार किया है कि साल 2017 में अक्टूबर तक 15 हजार से अधिक नवजात शिशुओं की मौत हो चुकी है। नवम्बर और दिसम्बर के आँकड़े इसमें शामिल नहीं हैं। उनको मिलाकर ये संख्या और बढ़ जायेगी। डेढ़ हजार से अधिक नवजात शिशु तो केवल अक्टूबर में मारे गये। सामाजिक कार्यकर्ता चेतन कोठारी को सूचना के अधिकार के तहत मिली जानकारी के अनुसार भारत में नवजात बच्चों के मरने का आँकड़ा बढ़ा ही भयावह है और

इसमें मध्य प्रदेश और यूपी सबसे टॉप पर हैं। आँकड़ों पर गौर करें तो केवल अप्रैल 2017 से जुलाई 2017 तक के केवल चार महीनों में देशभर में कम से कम 75,493 नवजात बच्चों की मौत हो चुकी है। इनमें भी 64,093 बच्चों की मौत एक साल से कम उम्र में हुई है। इसके अलावा एक से पाँच साल के बच्चों में भी मौत का आँकड़ा कम नहीं है। मध्य प्रदेश में 9,269, महाराष्ट्र में 5,547, यूपी में 8,440, गुजरात में 6,755 बच्चे मारे गये। इसके अलावा 2014-15 में एक से पाँच साल की उम्र के 16,042 बच्चे मरे, 2015-16 में 17,744, 2016-17 में 18,739 बच्चे मरे और अप्रैल से जुलाई 2017 तक

11,400 बच्चे मर चुके हैं। देश की बहाल स्वास्थ्य सेवाओं की इस हालत की पुष्टि हाल ही में हुए एक अध्ययन से भी होती है। मेडिकल जर्नल 'द लैंसेट' में प्रकाशित 'ग्लोबल बर्डेन ऑफ़ डिजीज़ स्टडी' के अनुसार भारत स्वास्थ्य सेवा से जुड़ी स्वास्थ्य सुविधाओं और सेवाओं के मामले में अपने कई पड़ोसी देशों से काफ़ी पीछे है। इस रिपोर्ट के अनुसार स्वास्थ्य सेवाएँ देने के क्षेत्र में भारत पिछली रैंकिंग से 11 स्थान से गिरकर 154वें स्थान पर पहुँच गया है। सूची में कुल 195 देश हैं। भारत सरकार स्वास्थ्य सुविधाएँ देने के मामले में श्रीलंका, बांग्लादेश, चीन, भूटान से भी पीछे है! रपट के अनुसार टीबी से

निपटने में भारत को 100 में से 26 का स्कोर मिला, जो पाकिस्तान (29/100) और कांगो (30/100) से कम है। इन रोगों के अलावा डायबिटीज़, गुर्दे और दिल से जुड़े रोगों के इलाज में भी भारत का स्कोर बेहद कम रहा है।

पूँजीवादी सरकारों की प्राथमिकता जनता को शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य सुविधाएँ, घर, बिजली-पानी आदि देना नहीं होता है। ये सरकारें पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटियाँ होती हैं जो मालिकों के वर्ग के हितों के लिए काम करती हैं। ये सरकारें इन असल मसलों से जनता का ध्यान भटकाने के लिए गाय, मन्दिर, लव जिहाद जैसे नक़ली मुद्दों (जो कि मुद्दे हैं ही नहीं, महज़ कुत्साप्रचार की

राजनीति है) का इस्तेमाल करती हैं। कई राज्यों में लगातार प्रसूताओं की मृत्यु, गोरखपुर से लेकर महाराष्ट्र तक के अस्पतालों में मरते बच्चे, और एम्बुलेंस की कमी के चलते अपने कन्धे पर शव ले जाते लोगों की तस्वीरें – आज़ादी के बाद के 70 साल के पूँजीवादी 'विकास' की यही सच्चाई है कि भारतीय पूँजीवाद ने जनता को कुछ नहीं दिया है। सरकार चाहे किसी भी पूँजीवादी दल की हो, जनता को इनसे ना तो कुछ मिला है और ना ही मिलेगा और पूँजीवादी लूटतन्त्र में इस समस्या का कोई समाधान है भी नहीं। हमें इस सड़ी हुई व्यवस्था के विकल्प के बारे में सोचना ही होगा।

- मुनीश मैन्दोला

लुधियाना में 9 वर्ष की बच्ची के अपहरण व क़त्ल के खिलाफ़ मेहनतकशों का जुझारू संघर्ष

बिहार के दरभंगा ज़िले से कुछ महीने पहले लुधियाना आकर रहने लगे जीतन राम के परिवार को पता नहीं था कि वो जिस शहर में रोज़ी-रोटी कमाने और अच्छी ज़िन्दगी का सपना लेकर आया है, उस शहर में उसके साथ कितना भयानक होने वाला है।

जीतन राम परिवार सहित लुधियाना आने से पहले दरभंगा शहर में रिक्शा चलाता था। तीन बेटियों और एक बेटे के विवाह के लिए उठाये गये क़र्ज़ का बोझ उतारने के लिए रिक्शा चलाकर कमाई पूरी नहीं पड़ रही थी। इसलिए उसने सोचा कि लुधियाना जाकर मज़दूरी की जाये। यहाँ आकर वह राज मिस्त्री के साथ दिहाड़ी करने लगा। उसकी पत्नी और एक 12 वर्ष की बेटि कारख़ाने में मज़दूरी करने लगी। सबसे छोटी 9 वर्षीय बेटि गीता उर्फ़ रानी को किराये के कमरे में अकेले छोड़कर जाना इस गरीब परिवार की मजबूरी थी। नज़दीक ही एक मध्यवर्गीय परिवार की प्रिया नाम की औरत गरीब मज़दूरों के बच्चों को घर का काम करवाने के लिए कभी लालच देकर, कभी ज़बरदस्ती अपने घर ले जाती थी। दिसम्बर के शुरू में ही वह रानी को अपने घर लेकर जाने लगी। पता लगने पर माता-पिता ने रानी को जाने से मना भी किया। लेकिन माता-पिता और बहन के काम पर चले जाने के बाद प्रिया आकर रानी को ले जाती थी।

16 दिसम्बर को रानी घर वापिस नहीं आयी। माता-पिता ने प्रिया के घर जाकर पता किया तो प्रिया ने दरवाज़ा खोले बिना ही कहा कि उसको उसने 5 बजे किसी काम से भेजा था लेकिन

वह वापस नहीं आयी। माता-पिता और मुहल्ला निवासियों ने जब प्रिया के घर की तलाशी ली तो बच्ची की चप्पल और कपड़े घर में मिले। अनेक सुरागों के कारण माता-पिता और मुहल्ला निवासियों को काफ़ी हद तक यकीन हो गया था कि रानी के गायब होने में प्रिया और उसके पति रंजीत कुमार का हाथ है। पुलिस को शिकायत की गयी। रिपोर्ट लिखाने के समय प्रिया और रंजीत भी वहाँ पहुँच गये। पुलिस ने जीतन राम को अलग बिठाकर प्रिया और रंजीत की हाज़िरी में झूठा बयान लिखा और भोले-भाले और अनपढ़ जीतन राम के धोखे से हस्ताक्षर करवा लिये। जीतन राम को भ्रम था कि उसने जो कहा है पुलिस ने वही लिखा है। लेकिन पुलिस ने एफ़आईआर में लिखा कि रानी साढ़े तीन बजे खेलने गयी थी और वापिस नहीं आयी। सिर्फ़ गुमशुदगी की धारा लगायी गयी। प्रिया और रंजीत का इसमें नाम नहीं डाला गया और उनके खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की गयी। जीतन राम द्वारा बार-बार पुलिस चौकी के चक्कर काटने के बाद एक बार पुलिस ने प्रिया के घर की तलाशी लेने का ड्रामा किया। तलाशी के दौरान उस घर में से रानी का तौलिया मिला। इसके बावजूद भी पुलिस ने प्रिया और उसके पति के खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की। एक पुलिस मुलाज़िम ने पीड़ित परिवार को पैसे लेकर चुप हो जाने और समझौते करने के लिए कहा। पुलिस की आरोपियों के साथ मिलीभगत स्पष्ट थी।

24 दिसम्बर की रात साढ़े ग्यारह बजे पुलिस ने रानी के माता-पिता को

उनके कमरे से पाँच सौ मीटर दूरी पर एक सुनसान जगह पर पड़ी एक बच्ची की लाश की शिनाख़्त के लिए बुलाया। यह रानी की लाश थी। लाश देखकर पता लग रहा था कि कई दिन पहले ही उस बच्ची का क़त्ल किया जा चुका है। कई दिनों की लाश होने के कारण काफ़ी बुरी हालत में थी। बदबू मार रही थी। अगले दिन शाम को हुए पोस्टमार्टम में पता लगा कि रानी की मौत गला दबाने के कारण हुई है। अगर पुलिस की आरोपियों के साथ मिलीभगत न होती, पीड़ित पक्ष के बयान सही ढंग से लिखकर सही ढंग से कार्रवाई की होती, जाँच की होती, तो शायद रानी ज़िन्दा होती।

असल में पुलिस को लाश दिन के चार बजे ही मिल चुकी थी। लेकिन उस दिन रविवार होने के कारण पुलिस ने रानी की लाश मिलने की बात देर रात तक छिपाकर रखी। पुलिस को डर था कि यह बात दिन समय पता लग गयी तो बड़े जनक्रोध का सामना करना पड़ेगा। उस समय कुछ गलियाँ छोड़कर ढण्डारी बलात्कार व क़त्ल काण्ड-2014 की पीड़िता शहनाज़ की तीसरी बरसी पर श्रद्धांजलि समागम चल रहा था। श्रद्धांजलि समागम में रानी के अगवा हो जाने और पुलिस द्वारा आरोपियों के खिलाफ़ कोई कार्रवाई न करने के मुद्दे पर ज़ोर देकर बात की जा रही थी और लोगों को इस मामले में संघर्ष के लिए तैयार रहने के लिए आह्वान किया गया था। रानी के माता-पिता भी श्रद्धांजलि समागम में हाज़िर थे। ढण्डारी बलात्कार व क़त्ल काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी द्वारा शनिवार को भी इलाक़े में गली-

गली प्रचार करके रानी के अगवा हो जाने के मसले पर संघर्ष शुरू करने का आह्वान किया था। इसलिए पुलिस जानती थी कि अगर दिन के समय में ही रानी की लाश मिलने की बात लोगों तक पहुँच जाती है तो कितने बड़े जनक्रोध का सामना करना पड़ेगा।

ढण्डारी बलात्कार व क़त्ल काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी में शामिल कारख़ाना मज़दूर यूनियन और टेक्सटाइल हौज़री कामगार यूनियन की अगुवाई में 25 दिसम्बर की सुबह साढ़े 7 बजे से ही लोग इकट्ठा होने लगे। दो घण्टों में ही संख्या दो-ढाई हजार तक पहुँच गयी। बहुत सारे दुकानदार भी दुकानें बन्द करके प्रदर्शन में शामिल हो गये। लोगों ने साथ वाली सड़क जाम कर दी और यह ऐलान किया गया कि अगर प्रिया और उसके पति के खिलाफ़ एफ़आईआर दर्ज नहीं होती और उनको गिरफ़्तार नहीं किया जाता तो न सिर्फ़ धरना जारी रहेगा बल्कि अगर ज़रूरत पड़ी तो जीटी रोड जाम किया जायेगा। मज़दूरों-मेहनतकशों के रोष के आगे झुकते हुए एडीसी पुलिस ने मौक़े पर पहुँचकर माँगें मानने का ऐलान किया। एडीसीपी ने बताया कि आरोपियों को गिरफ़्तार किया जा चुका है। पुलिस ने धरनास्थल पर ही रानी के पिता के बयान दर्ज किये। प्रिया और रंजीत के नाम एफ़आईआर में जोड़े गये।

सही ढंग से जाँच-पड़ताल, दोषियों को सख्त सज़ा, पीड़ित परिवार को 10 लाख रुपये मुआवज़ा, दोषी पुलिस मुलाज़िमों के खिलाफ़ सख्त से सख्त कार्रवाई, समाज में औरतों की सुरक्षा

आदि के लिए संघर्ष आगे बढ़ाने के लिए दुर्गा कालोनी अगवा व क़त्ल काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी का गठन किया गया। इस कमेटी में कारख़ाना मज़दूर यूनियन के लखविन्दर, टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के राजविन्दर, नौजवान भारत सभा की बिन्नी, पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन (ललकार) के सतपाल, मुहल्ले में से दिनकर कुमार पाण्डे, आशुतोष शाही, रमाशंकर साहू को शामिल किया गया। अगले दिन 26 दिसम्बर को डीसी और पुलिस कमिश्नर दफ़्तरों पर प्रदर्शन करके माँग-पत्र सौंपा गया।

इन धरने-प्रदर्शनों के दौरान वक्ताओं ने कहा कि औरतों समेत सारे मज़दूरों-मेहनतकश लोगों के साथ बढ़ रहे अपराधों के असल दोषी लुटेरे हुक्मरान हैं, सरकारें हैं, पुलिस प्रशासन हैं। उन्होंने कहा कि जनता को एकजुट होकर अपराधियों, पुलिस, प्रशासन और राजनीतिक नापाक गँठजोड़ के खिलाफ़ संघर्ष करने के लिए आगे आना होगा। सभी वक्ताओं ने रानी की मौत पर शोक प्रकट करते हुए कहा कि औरतों की सुरक्षा के लिए एक ज़ोरदार और व्यापक लहर की ज़रूरत है। डीसी और पुलिस कमिश्नर दफ़्तरों पर प्रदर्शन को डेमोक्रेटिक लायज़ं एसोसिएशन के एडवोकेट हरप्रीत सिंह जीरख, मज़दूर अधिकार संघर्ष अभियान के सुरेन्द्र, नौजवान भारत सभा के अरुण, मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्स यूनियन के हरजिन्दर सिंह आदि ने भी सम्बोधित किया।

– बिगुल संवाददाता

लुधियाना पुलिस कमिशनरी में धरना-प्रदर्शनों पर पाबन्दी के खिलाफ़ विशाल संघर्ष का ऐलान

जब लोग नये वर्ष के जश्न मना रहे थे उस समय लोगों के खिलाफ़ एक बड़े हमले को अंजाम देते हुए लुधियाना प्रशासन 1 जनवरी 2018 से लुधियाना पुलिस कमिश्नरी में धरना-प्रदर्शनों पर पाबन्दी का फ़रमान जारी कर रहा था। पुलिस कमिश्नरी, लुधियाना के क्षेत्र में डीसी के आदेशों के मुताबिक़ पुलिस कमिश्नर द्वारा अनिश्चितकाल के लिए धारा 144 लगाकर यह रोक लगा दी गयी है। धरना-प्रदर्शनों के लिए शहर के बाहरी हिस्से में एक जगह (गलाडा मैदान) तय कर दिया गया है। ज़िले के बड़ी संख्या में इंसोफ़रसन्द जनवादी संगठनों ने इसकी सख्त निन्दा करते हुए माँग की है कि यह हुक्म वापिस लिया जाये। लेकिन डीसी लुधियाना ने एक बार फिर ग़ैरजनवादी और ग़ैरज़िम्मेवाराना रवैया दिखाते हुए 9 जनवरी को संगठनों के प्रतिनिधिमण्डल से मीटिंग के लिए समय तय किये जाने के बावजूद मीटिंग नहीं की। उसी दिन संगठनों ने मीटिंग करके ऐलान किया कि अगर एक सप्ताह में धारा 144 रद्द नहीं की जाती तो 18 से 20 जनवरी तक लुधियाना ज़िला में विभिन्न जगहों पर प्रदर्शन किये जायेंगे। इसके बाद 30 जनवरी को डीसी लुधियाना के कार्यालय पर विशाल रैली की जायेगी।

संगठनों का कहना है कि धरना-प्रदर्शनों के लिए सिर्फ़ एक स्थान तय कर देना किसी भी प्रकार जायज़ नहीं है बल्कि इसके पीछे जनआवाज़ कुचलने की साज़िश है। हालाँकि यह रोक सरकारी

कामकाज बेरोक चलाने, लोगों की सहूलत, अमन-क़ानून की व्यवस्था बनाये रखने के बहाने लगायी गयी है लेकिन वास्तविक निशाना अधिकारों के संघर्षशील लोग हैं। यह रोक किसी भी प्रकार मानने योग्य नहीं है। धारा 144 लगाना संगठित होने, संघर्ष करने के बुनियादी जनवादी अधिकार पर हमला है। ऐसे आदेशों से जनसंघर्ष रुकने नहीं वाले बल्कि और तीखे ही होंगे। केन्द्रीय और राज्य स्तरों पर हुक्मरानों द्वारा धड़ाधड़ काले क़ानून बनाये जा रहे हैं। पंजाब में भी जनसंघर्षों को दबाने की साज़िश तले पंजाब सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक़सान रोकथाम क़ानून लागू कर दिया गया है और गुण्डागर्दी रोकने के बहाने नया काला क़ानून पकोका भी बनाने की तैयारी है। डिप्टी कमिश्नर और पुलिस कमिश्नर लुधियाना द्वारा जारी हुए हुक्म भी इसी दमनकारी प्रक्रिया का अंग है।

अपनी समस्याएँ हल न होने पर लोगों को मज़बूरीवश विभिन्न सरकारी अधिकारियों के दफ़्तरों, संसद-विधानसभा मैम्बर, मेयर, काऊंसलर, थाना, चौकी, सड़कों आदि पर प्रदर्शन करने पड़ते हैं। हक़ों के लिए इकट्ठा होना और आवाज़ बुलन्द करना लोगों का जनवादी ही नहीं बल्कि संवैधानिक हक़ भी है। भारतीय संविधान की धारा 19 के तहत लोगों को अपने विचारों और हक़ों के लिए संगठित होने व संघर्ष करने की आज़ादी है। यह हुक्म लोगों के संवैधानिक व जनवादी अधिकार का हनन है।

(पेज 2 पर जारी)

पंजाब के 60 से अधिक जनवादी-जनसंगठनों ने काले क़ानूनों के खिलाफ़ तालमेल फ़्रण्ट बनाया

पंजाब की कांग्रेस सरकार ने पंजाब सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक़सान रोकथाम क़ानून लागू कर दिया है। एक और काला क़ानून पकोका बनाने की तैयारी है। इन दमनकारी काले क़ानूनों के खिलाफ़ पंजाब के इंसोफ़रसन्द जनवादी-जनसंगठन भी संघर्ष के मैदान में कूद पड़े हैं। मज़दूरों, किसानों, सरकारी मुलाज़िमों, स्त्रियों, छात्रों, नौजवानों, जनवादी अधिकार कार्यकर्तों आदि के 60 से अधिक जनसंगठनों ने देश भगत यादगार हॉल, जालन्धर में मीटिंग करके 'काले क़ानूनों के खिलाफ़ जनवादी जनसंगठनों का तालमेल फ़्रण्ट, पंजाब' बनाया है। 10 दिसम्बर 2017 को सभी ज़िला हैडक्वार्टरों पर इन काले क़ानूनों को रद्द करवाने के लिए संगठनों के प्रतिनिधिमण्डलों ने माँग पत्र सौंपे। इसके बाद गुजरे साल के अन्तिम दिन, 31 दिसम्बर को, देश भगत यादगार हाल, जालन्धर में पंजाब स्तरीय विशाल कन्वेंशन करके पंजाब की कांग्रेस सरकार द्वारा लाये गये काले क़ानूनों के खिलाफ़ संघर्ष के लिए आगे आने के लिए जनता का आह्वान किया गया। 16 फ़रवरी को बरनाला और 17 फ़रवरी को जालन्धर में पंजाब स्तरीय दो महारैलियाँ करने का ऐलान भी किया गया।

कन्वेंशन को सम्बोधित करते हुए वक्ताओं ने कहा कि पिछली अकाली-भाजपा सरकार ने 'पंजाब सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक़सान रोकथाम क़ानून' जनता के सख्त विरोध के बावजूद

बना तो लिया था लेकिन जनदबाव व विधानसभा चुनाव नज़दीक होने के कारण लागू नहीं किया था। कांग्रेस उस समय तो इन क़ानूनों के लिए अकाली-भाजपा सरकार का विरोध कर रही थी, लेकिन अब खुद ही सत्ता में पहुँचकर इसे लागू कर दिया है। पंजाब की कांग्रेस सरकार का जनविरोध चेहरा एक बार फिर बेपर्दा हो चुका है।

वक्ताओं ने यह बात ज़ोर देकर कही कि हालाँकि ये काले क़ानून सार्वजनिक व निजी जायदाद के नुक़सान रोकने व गुण्डागर्दी को लगाम कसने के बहाने लाये जा रहे हैं लेकिन असल निशाना जनता के अधिकारों पर डकैती तेज़ करना है, जनसंघर्षों को कुचलना है, जन नेताओं को झूठे-नाजायज़ केसों में उलझाना, दमन का शिकार बनाना है। ये काले क़ानून अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने, एकता बनाने, संघर्ष करने के जनवादी अधिकारों पर तीखा हमला है। इसलिए हर इंसोफ़रसन्द व्यक्ति को इन काले क़ानूनों के खिलाफ़ संघर्ष के मैदान में कूदने की ज़रूरत है।

काले क़ानूनों के खिलाफ़ जनवादी जनसंगठनों का तालमेल फ़्रण्ट, पंजाब में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, कारख़ाना मज़दूर यूनियन, नौजवान भारत सभा, पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन (ललकार), भाकियू (उगराहाँ), किरती किसान यूनियन, भाकियू (डकौंदा), भाकियू (क्रान्तिकारी), किसान संघर्ष कमेटी पंजाब, आज़ाद किसान संघर्ष

(पेज 2 पर जारी)

कड़कड़ाती ठण्ड और 'स्मॉग' के बीच मज़दूर वर्ग का जीवन

- शिशिर गुप्ता

कुछ लोग नसीहत देते हैं कि हर मौसम का अपना-अपना मिजाज़ होता है और इंसान को सबके मजे लेने चाहिए। ऐसा बोलते हुए वे भूल जाते हैं कि एक वर्ग-आधारित समाज में अमूर्त बातों का भी वर्ग-चरित्र होता है। इस देश की बहुसंख्यक जनसंख्या को गर्मी में लू के थपड़े पड़ते हैं, बारिश में नाले का सड़ा हुआ पानी घर में घुसता है और जाड़े में - जाड़े में तो जाने कितने अभागों की अकाल मौत बस इसलिए हो जाती है कि उनके पास जाड़े से बचने का कोई चारा ही नहीं था। हाँ, जाड़े में घटिया किस्म का जूता-चप्पल और जैकेट-स्वेटर पहनकर काम करने वाली बहुसंख्यक मेहनतकश मज़दूर आबादी के द्वारा अपना हाड़-मांस गलाकर बनाये गये बढ़िया रेशोदार और गरम ऊनी कपड़े, कम्बल और तमाम इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का इस्तेमाल करने वाला परजीवी पूँजीपति वर्ग और उसके पिछलग्गू मध्यम और उच्च-मध्यम वर्गों के लोग ज़रूर मौसम के मजे लेने जैसे व्यसन पाल सकते हैं।

कहने की ज़रूरत नहीं कि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत ढंग का कम्बल भी नहीं जुगाड़ पाने वालों के लिए साल भर में ठण्ड से ही सबसे ज्यादा मार पड़ती है। और अब इसी मरणासन्न सड़ते हुए पूँजीवाद ने वायुमण्डल को भी इस क्रूर प्रदूषित कर दिया है कि इस बार दिल्ली में ठण्ड ने भयंकर 'स्मॉग' के साथ दस्तक दी। पूँजीपतियों की हमदर्द सरकारों, और उन्हीं के भोंपू टीवी समाचार चैनल विलाप करते रहे कि प्रदूषण पर लगाम लगनी चाहिए और नीम-हकीमी नुस्खे समझाते रहे कि दफ़्तरों-स्कूलों में छुट्टी करें (कारखानों-वर्कशॉपों में नहीं!), चेहरे पर मास्क लगायें, पर्याप्त मात्रा में पानी पियें, घर के अन्दर ही रहें वगैरह-वगैरह! इन महानुभावों ने कभी ये नहीं बताया कि रोजाना दिहाड़ी पर काम करने वाला छुट्टी कैसे ले, रिक्शा चलाकर कमाने वाला कितनी देर तक घर के अन्दर बैठा रहे और गाज़ियाबाद के फारूख नगर में पटाखे बनाने की वर्कशॉपों में काम करने वाले बच्चे कौन सा मास्क लगायें जो उन्हें 'स्मॉग' से, कारखाने की जानलेवा

धूल से (जिससे उन्हें पहले ही दमा और टीबी हो चुका होता है) और सुपरवाइजर की गालियों और थप्पड़ों से बचा सके! मेहनतकशों की अन्य समस्याएँ गिनाकर हम ये नहीं कहना चाहते कि 'स्मॉग' जैसी समस्याओं को उन्हें गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए, बल्कि ज़रूर लेना चाहिए और उसके मूलभूत कारणों की तहक्रीकात भी करनी चाहिए! यह लेख उसी दिशा में एक छोटा सा प्रयास है। आइए सबसे पहले जानते हैं कि 'स्मॉग' होता क्या है!

ठण्ड में कोहरा तो हर साल होता है, मगर प्रदूषण के साल दर साल बढ़ते जाने से कोहरा प्रदूषित धुएँ से मिलकर लगातार सघन होता गया है और यह सघनता इस बार इतनी ज्यादा और नुकसानदेह थी कि इसे 'स्मॉग' कहा गया। इसमें सबसे खतरनाक कण होता है पीएम 2.5 जिसका स्तर 150 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर पार करते-करते किसी हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति के लिए भी दिक्कततलब हो जाता है और इस बार के 'स्मॉग' के दौरान तो दिल्ली में स्तर 400 के ऊपर होना आम बात थी! 'स्मॉग' के कारण खाँसी-सर्दी, सीने में संक्रमण, आँख में जलन हो सकती है, दमा के मरीजों को इसका दौरा पड़ सकता है और अकाल प्रसव की सम्भावना बढ़ जाती है।

मेहनतकशों के जीवन में वैसे ही कठिनाइयों का ताँता लगा रहता है। ठण्ड का मौसम भी उनके लिए एक चुनौती ही होता है। कड़कड़ाती ठण्ड में जब लोगों से कम्प्यूटर पर भी हाथ नहीं चलाये जाते, मज़दूरों को कारखानों में फिर भी 12 घण्टे की ड्यूटी पूरी करनी ही पड़ती है। ऐसे में सड़क-पुल-मकान इत्यादि के निर्माण कार्य में लगे मज़दूरों का कार्य और भी दुश्चर हो जाता है। सुरक्षा गार्ड की नौकरी करने वाले और सफ़ाई काम के लिए ठेके पर रखे गये नगर निगमों के मज़दूरों के लिए भी ठण्ड को झेलने के अलावा कोई चारा नहीं होता। ठण्ड में बच्चे भी सुविधा-सम्पन्न देखभाल के अभाव में ज्यादा बीमार पड़ते हैं और दवा-इलाज पर होने वाला खर्च बढ़ जाता है। कई रिक्शे वाले कम आमदनी के चलते कमरा किराये पर नहीं ले पाते और किसी तरह रिक्शे पर ही कोहरे

और ठण्ड में सोते हैं। इतनी मुसीबत के बाद 'स्मॉग' जैसी नयी-नयी समस्याएँ मेहनतकश तबके का जीवन बदतर बना देती हैं क्योंकि इसके खतरों से सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप में उन्हीं का आमना-सामना होता है।

ठण्ड में 'स्मॉग' की यह समस्या असल में एक विश्वव्यापी समस्या है। मगर विकसित देशों की आम जनता में ऐतिहासिक कारणों से अपने अधिकारों को लेकर जागरूकता और उनके लिए लड़ने का जज़्बा ऐसा है कि वहाँ का बुर्जुआ वर्ग भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, फिलिपींस जैसे देशों के मेहनतकशों की हड्डियाँ निचोड़कर अपने देश की जनता को राहत देता रहा है। इसीलिए जहाँ भारत जैसे देशों में अभी भी ऊर्जा के लिए खराब किस्म के डीजल-पेट्रोल और कोयले का ही ज्यादा प्रयोग किया जाता है, वहीं विकसित देशों में बढ़िया किस्म का डीजल-पेट्रोल-गैस, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और नाभिकीय ऊर्जा इत्यादि का प्रयोग होने लगा है। हमारे यहाँ बिना फ़िल्टर वाली चिमनियों से ज़हरीला धुआँ निकलता रहता है, कूड़े-करकट के निस्तारण तक की ढंग की व्यवस्था नहीं होती, बस मध्य-वर्गीय और अमीरों के इलाकों से कूड़ा इकट्ठा कर मज़दूर बस्तियों के आस-पास कहीं जमा कर दिया जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की 2014 की एक रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया के 20 सर्वाधिक प्रदूषित शहरों में से 13 भारत के थे। इन 20 प्रदूषित शहरों में पहला स्थान दिल्ली का था। दिल्ली में हर साल प्रदूषण जनित बीमारियों से 10 हज़ार से लेकर 30 हज़ार तक मौतें होती हैं। राष्ट्रीय स्तर पर इन मौतों का आँकड़ा 6 लाख 50 हज़ार है। दुनिया के दो अरब बच्चे प्रदूषित हवा में साँस लेते हैं। इनमें से 62 करोड़ बच्चे दक्षिण एशिया के (जिनमें भारत सबसे ऊपर है), 52 करोड़ अफ़्रीका के तथा 45 करोड़ पूर्वी एशिया व प्रशान्त क्षेत्र के हैं। पिछले कई वर्षों से वायु प्रदूषण के मामले में भारत की स्थिति दुनिया में सबसे खराब बनी हुई है और हर आने वाले वर्ष के साथ बद से बदतर होती जा रही है। 2015 में ग्रीनपीस, इण्डिया

ने अपनी एक जाँच में भारत के 168 में से 154 शहरों में (यानी 90 प्रतिशत शहरों में) वायु प्रदूषण राष्ट्रीय पैमाने पर निर्धारित स्तर से अधिक पाया। इन 168 में से एक भी शहर में वायु प्रदूषण विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित स्तर से नीचे नहीं था। कहने की ज़रूरत नहीं कि वास्तविक स्थिति उपरोक्त आँकड़े से भी ज्यादा ख़ौफ़नाक है क्योंकि गरीबों-मेहनतकशों के परिवारों में होने वाली तमाम बीमारियों का कोई रिकॉर्ड ही नहीं मौजूद होता। वैसे तो प्रदूषण जनित बीमारियों से समाज का हर तबका प्रभावित होता है, लेकिन मेहनत-मज़दूरी करने वाले तबके को इनका दंश सबसे ज्यादा झेलना पड़ता है।

जाहिर है कि इस बेहद गम्भीर स्थिति के लिए कारखानों की अनियन्त्रित धुँआ उगलती चिमनियों के साथ-साथ सड़कों पर हर रोज बढ़ती वाहनों की संख्या ही मुख्य तौर पर जिम्मेदार है। अकेले दिल्ली की सड़कों पर रोजाना लगभग 90 लाख पेट्रोल और डीजल चालित वाहन होते हैं। जाड़े के दिनों में दिल्ली और पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 'स्मॉग' और प्रदूषण की समस्या को अतिगम्भीर बनाने वाला एक अतिरिक्त कारक पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तर प्रदेश-उत्तरांचल के तराई अंचल के किसानों द्वारा मध्य अक्टूबर से लेकर नवम्बर के शुरुआती हफ़्ते तक खेतों में धान की पराली जलाना होता है। इसमें पंजाब सबसे आगे है। दूसरे स्थान पर हरियाणा है, लेकिन पश्चिमी उत्तर प्रदेश और तराई में भी यह चलन बढ़ता जा रहा है और अब राजस्थान भी इसकी चपेट में है। इन इलाकों के बड़े किसान मज़दूरी का खर्च बचाकर आमद बढ़ाने के लिए पराली को जला देते हैं जबकि छोटे किसान ज्यादातर मामलों में पराली जलाते नहीं। उसे हाथ से काटकर वे पशुओं के चारे, जाड़े में उनके नीचे बिछाने या चटाई बनाने आदि में इस्तेमाल करते हैं। 'सुपर स्ट्रॉ मैनेजमेण्ट सिस्टम', टीएचएस मशीन का प्रयोग, प्लावर के प्रयोग से पराली को मिट्टी में मिला देना और रोटावेटर और बेलर के इस्तेमाल जैसी पराली के निस्तारण की तमाम तरीके उपलब्ध होने के बावजूद लागत कम से कम रखने के लिए धनी

किसान इन्हें नहीं अपनाते और सरकारें भी अपनी वर्ग-पक्षधरता के चलते चुप्पी साधे रहती हैं।

यह वर्गीय पक्षधरता ही है कि नगर निगम मध्यम वर्गीय इलाकों का कूड़ा मज़दूर बस्तियों के पास कहीं पाट कर वहाँ की आबोहवा ज़हरीली बनाते हैं और पूँजीपति खुलेआम बिना फ़िल्टर वाली चिमनियों का प्रयोग करते हैं। यह भी इस पूरी व्यवस्था की वर्गीय पक्षधरता ही है कि परिवहन के क्षेत्र में भी हुई अभूतपूर्व तकनीकी प्रगति का इस्तेमाल सार्वजनिक यातायात को बेहतर बनाने की बजाय अमीरों के लिए लम्बरी कारों को बनाने में किया जाता है। 'स्मॉग' की समस्या बढ़ने पर मीडिया में तमाम धुन्धर विशेषज्ञ पर्यावरण पर अपने घड़ियाली आँसू बहाते नज़र आने लगते हैं; बेशर्मी की हद तो तब हो जाती है जब ऐसे विश्लेषणों के बीच कारों के विज्ञापन आने का सिलसिला बदस्तूर जारी रहता है और लोगों को अपनी मनपसन्द कार लेने के लिए सस्ती दरों पर कर्ज़ की भाँति-भाँति की स्कीमों के लालच भरे ऑफ़र परोसे जाते हैं। ज़रा सोचिए दोस्तो, क्या ये 'स्मॉग' का सवाल महज़ पर्यावरण और विज्ञान का सवाल है, जैसा कि पूँजीवादी भोंपू मीडिया और तमाम खा-पीकर अघाये बुद्धिजीवी हमें समझाना चाहते हैं? नहीं! ये आपकी जिन्दगी जीने की रोजाना की जदोज़हद और समाज में उत्पादन की प्रणाली से जुड़ा सवाल है। ये इस बात से जुड़ा है कि आप अपने बच्चों को बचाने के लिए अच्छे वाले मास्क और एयर प्योरिफ़ायर कहाँ से खरीदेंगे? निरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए विटामिन सी वाले फल कैसे खायेंगे? प्रदूषक कण साँस के साथ फेफड़ों में न जायें, इसके लिए मेहनत भरी गतिविधियाँ बन्द या कम कैसे कर सकेंगे? इसलिए टीवी चैनल वाले और सरकारें अपने नीम-हकीमी नुस्खे बताते रहें, हमें तो अपनी दिक्कतों की जड़ से शिनाख्त कर वहीं पर प्रहार करना होगा। पर्यावरण के विनाश को रोकने के लिए भी हमें पूरे समाज में लोभ-लालच, मतलबपरस्ती और मुनाफ़ाखोरी का धुँआसा फैलाने वाली पूँजीवादी व्यवस्था का नाश करने की तैयारी करनी होगी।

ढण्डारी अपहरण, बलात्कार व क्रल काण्ड-2014 की पीड़िता शहनाज़ की तीसरी बरसी पर श्रद्धांजलि समागम

ढण्डारी अपहरण, बलात्कार व क्रल काण्ड की पीड़िता शहनाज़ की तीसरी बरसी पर 24 दिसम्बर 2017 को ढण्डारी बलात्कार व क्रल काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी द्वारा ढण्डारी, लुधियाना में श्रद्धांजलि समागम किया गया। श्रद्धांजलि समागम में शामिल लोगों ने शहनाज़ को इंसान दिलाते के लिए संघर्ष जारी रखने का संकल्प लिया। वक्ताओं ने कहा कि बलात्कारी गुण्डा गिरोह के खिलाफ़ शहनाज़ के न्यायपूर्ण संघर्ष को कभी भी भुलाया

नहीं जा सकता। श्रद्धांजलि समागम को विभिन्न जनसंगठनों के प्रतिनिधियों व शहनाज़ के पिता ने सम्बोधित किया। क्रान्तिकारी सांस्कृतिक मंच 'दस्तक' द्वारा जुझारू गीत पेश किये गये। जनचेतना द्वारा पुस्तक प्रदर्शनी भी लगायी गयी।

कारखाना मज़दूर यूनियन, पंजाब; टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, पंजाब; स्त्री मज़दूर संगठन, पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन (ललकार); नौजवान भारत सभा व बिगुल मज़दूर दस्ता

संगठनों द्वारा गठित 'ढण्डारी बलात्कार व क्रल काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी' द्वारा आयोजित श्रद्धांजलि समागम में विभिन्न संगठनों के वक्ताओं ने कहा कि शहनाज़ दमन-उत्पीडन की शिकार सभी स्त्रियों और साधारण जनता के सामने संघर्ष का प्रतीक है। बलात्कार, अपहरण, छेड़छाड़ जैसे जुल्मों का शिकार अधिकतर स्त्रियाँ व उनके परिवार इन घटनाओं को सामाजिक बदनामी, मारपीट, जान गँवाने, न्याय की नाउम्मीदी आदि कारणों के चलते

छिपा जाते हैं। लेकिन बहादुर शहनाज़ और उसके परिवार ने ऐसा नहीं किया। शहनाज़ ने लड़ाई लड़ी और वह लड़ते-लड़ते मौत को गले लगा गयी। वह जुल्म के सामने घुटने न टेकने की मिसाल क्रायम करके गयी है। उसे हमेशा याद रखना होगा। वक्ताओं ने कहा कि स्त्रियों को भयानक जुल्मों का सामना करना पड़ रहा है। स्त्रियों को इसके खिलाफ़ एकजुट होना होगा। हर इंसानपसन्द व्यक्ति को इस संघर्ष में शामिल होना होगा। उन्होंने कहा कि लोगों को स्त्रियों सहित सभी

आम लोगों की सुरक्षा, दमन-जुल्म से छुटकारे के लिए सरकारी व्यवस्था से कोई उम्मीद न करके एकजुट होना होगा। उन्होंने कहा कि लोगों को गुण्डा-पुलिस-राजनीति के नापाक गँठजोड़ के खिलाफ़ जुझारू जनान्दोलन संगठित करना होगा।

शहनाज़ को 4 दिसम्बर 2014 को एक गुण्डा गिरोह ने मिट्टी का तेल डालकर आग लगाकर जला डाला था। इससे पहले शहनाज़ को 25 अक्टूबर (पेज 2 पर जारी)

2जी स्पेक्ट्रम घोटाले के सभी आरोपी बरी अदालत का फ़ैसला संसाधनों की बेहिसाब पूँजीवादी लूट पर पर्दा नहीं डाल सकता

पराग वर्मा

2जी घोटाले में जिन 14 लोगों और तीन कम्पनियों पर आरोप लगे थे, उन सबको सीबीआई की एक विशेष अदालत ने बरी कर दिया है। अब तक 2जी घोटाले को भारत का सबसे बड़ा आर्थिक घोटाला माना जाता रहा है। यह घोटाला साल 2010 में सामने आया, जब भारत के महालेखाकार और नियन्त्रक (कैग) ने अपनी एक रिपोर्ट में साल 2008 में किये गये स्पेक्ट्रम आवण्टन की प्रक्रिया पर सवाल खड़े किये थे। इसमें 2जी दूरसंचार स्पेक्ट्रम को नेताओं-नौकरशाहों और पूँजीपतियों की मिलीभगत से कुछ निजी कम्पनियों को उसकी सम्भावित क्रीमत से कम क्रीमत में बेच देने का आरोप था। अब जब अदालत में सभी नेताओं, नौकरशाहों और उद्योगपतियों पर लगे धोखाधड़ी और घूस लेने के आरोप सिद्ध नहीं हुए हैं और उन्हें क्लीन चिट दे दी गयी है तो कांग्रेस पार्टी और उसके समर्थक इसे अपनी नैतिक विजय बता रहे हैं। दूसरी ओर भाजपा और उसके समर्थकों का इस फ़ैसले के बाद से अचानक न्यायालय से विश्वास उठ गया है। इन चुनावी पार्टियों के इतिहास से वाकिफ़ हर कोई जानता है कि न्याय की प्रक्रिया पर इनका विश्वास इस पर निर्भर करता है कि फ़ैसला इनके पक्ष में आया है या इनके खिलाफ़। कांग्रेस व उसके समर्थकों को यदि न्यायपालिका पर इतना ही विश्वास है तो उन्हें नरेन्द्र मोदी को 2002 के गुजरात नरसंहार के लिए दोषी नहीं ठहराना चाहिए क्योंकि न्यायालय ने तो मोदी को बरी कर दिया था। न्यायालय ने तो अमित शाह को भी सोहराबुद्दीन टिपल मर्डर केस में कोई जुर्म न साबित होने पर बरी कर दिया था। दूसरी ओर आज जो भाजपा समर्थक 2जी फ़ैसले पर सवाल उठा रहे हैं, वे वही लोग हैं जो उपरोक्त मामलों में मोदी और शाह की भूमिका पर सवाल उठाये जाने पर न्यायालय के फ़ैसले को पवित्र गाय तुल्य मानते हुए अपने नेताओं का बेशर्मी से बचाव करते हैं। लेकिन इस देश के आम नागरिक की हैसियत से इस पूरे मामले पर नज़र दौड़ाने पर हम न सिर्फ़ चुनावी पार्टियों के नेताओं की लूट-खसोट से रूबरू होते हैं बल्कि हमें इस गंगी सच्चाई का भी एहसास होता है कि मौजूदा व्यवस्था में न्यायालय, सीबीआई, पुलिस, नौकरशाही ये सभी थैलीशाहों के हितों में मुस्तैदी से काम करते हैं।

क्या था 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला?

आइए देखते हैं कि ये 2जी घोटाला आखिर था क्या और इस पर आये न्यायालय के फ़ैसले के मुख्य कारक क्या हैं। 2जी घोटाला साल 2010 में सामने आया जब भारत के तत्कालीन महालेखाकार और नियन्त्रक (कैग) विनोद राय ने अपनी एक रिपोर्ट में साल 2008 में किये गये स्पेक्ट्रम आवण्टन पर सवाल खड़े किये। इस रिपोर्ट के मुताबिक़ संचार मन्त्रालय ने जो स्पेक्ट्रम लाइसेंस निजी कम्पनियों को दिये थे

वो नीलामी की बजाय 'पहले आओ पहले पाओ' की नीति के हिसाब से कौड़ियों के दाम में दे दिये जिसके कारण सरकारी ख़जाने को 1 लाख 76 हजार करोड़ रुपयों तक का नुक़सान हुआ। महालेखाकार द्वारा बताये गये इस आँकड़े को लेकर भी बहस थी कि ये कितना सही है और इस आँकड़े के अनुमान लगाने की प्रक्रिया कितनी सही है, लेकिन फिर भी इस रिपोर्ट से इतना तय हो गया था कि स्पेक्ट्रम के आवण्टन में घपला तो हुआ है और तब यह एक बड़ा राजनीतिक विवाद बनकर उभरा जिसने 2014 के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस नीत यूपीए की सरकार गिराने में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

तत्कालीन दूरसंचार मन्त्री और द्रमुक नेता ए राजा पर ये आरोप लगने लगे थे कि उन्होंने कुछ टेलीकॉम कम्पनियों को फ़ायदा पहुँचाने की नीयत से स्पेक्ट्रम लाइसेंस को कम दरों में बेचने की अनुमति दी और उन्होंने सी.वी. सी, कानून मन्त्रालय और प्रधानमन्त्री कार्यालय के निर्देशों को भी अनदेखा किया। ए राजा को हटाने की माँग को लेकर विपक्ष ने संसद की कार्यवाही ठप की और अन्ततः उन्हें इस्तीफ़ा देना पड़ा था। पराजय गुहा ठाकुरता, सुब्रमण्यम स्वामी, प्रशान्त भूषण और सिविल सोसाइटी के कुछ अन्य लोगों द्वारा देश के सर्वोच्च न्यायालय में इस मामले की जाँच के लिए याचिका भी दाखिल की गयी थी। इस मामले में छानबीन के लिए उच्च न्यायालय के मार्गदर्शन में मुख्य जाँच एजेंसी सीबीआई ने ए राजा के अलावा कई और हस्तियों और कम्पनियों से पूछताछ की और जाँच के पश्चात उन पर आरोप तय किये। इसके अलावा द्रमुक सुप्रीमो करुणानिधि की बेटी कनिमोड़ी पर भी आरोप लगा कि उन्होंने अपनी पार्टी के कलैनार टीवी चैनल के लिए 200 करोड़ रुपये की रिश्त डीबी रियल्टी के मालिक शाहिद बलवा से ली जिसके बदले में ए राजा ने डीबी रियल्टी की ही स्वान टेलीकॉम कम्पनी को सस्ते में स्पेक्ट्रम का लाइसेंस दिलाया। इस 200 करोड़ की रिश्त को कलैनार टीवी तक पहुँचाने के पुख्ता सबूत भी पाये गये थे। राजीव बलवा जो कि आसिफ़ बलवा के भाई हैं, कुसगाँव फ़ूट्स और वेजिटेबल प्राइवेट लिमिटेड में 50 फ़ीसदी के मालिक भी हैं, उन्होंने और कुसगाँव फ़ूट्स और वेजिटेबल प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक राजीव अग्रवाल ने 212 करोड़ रुपये रिश्त के रूप में करीम मोरानी की कम्पनी सिनेयुग को दिये जो अन्ततोगत्वा करुणानिधि की बेटी कनिमोड़ी के कलैनार टीवी तक पहुँचे। रिश्त की इस प्रक्रिया में जुड़े सभी लोगों पर आपराधिक मामले दर्ज हुए थे। इसके अलावा ए. राजा के सहायक रहे दूरसंचार सचिव सिद्धार्थ बेहुरा और उनके निजी सचिव आर के चन्दोलिया पर भी आवण्टन में हुई अनियमितताओं में साथ देने का आरोप लगा। स्वान टेलिकॉम के निदेशक विनोद गोयनका और महाप्रबन्धक शाहिद बलवा पर उनकी कम्पनी को जायज़ से

कहीं कम दाम पर स्पेक्ट्रम आवण्टन होने के लिए रचे आपराधिक षड्यन्त्र में भाग लेने का आरोप तय हुआ। यूनितेक के पूर्व महाप्रबन्धक चन्द्रा को भी इस घोटाले के मुख्य लाभार्थियों में से देखा गया क्योंकि स्पेक्ट्रम लेने के तुरन्त बाद उन्होंने अपनी कम्पनी के स्पेक्ट्रम लाइसेंस किसी विदेशी कम्पनी को बहुत ऊँचे दाम पर बेच दिये और अपार मुनाफ़ा कमाया। अनिल अम्बानी समूह की कम्पनियों के तीन शीर्ष अधिकारी गौतम दोषी, सुरेन्द्र पिपारा और हरी नायर पर भी फ़र्जी शैल कम्पनी बनाके सस्ते दामों पर स्पेक्ट्रम लाइसेंस लेने के आरोप लगे।

तीन कम्पनियों - स्वान टेलीकॉम लिमिटेड, रिलायंस टेलीकॉम लिमिटेड और यूनितेक वायरलेस को भी अलग से आरोपी बनाया गया। गौरतलब है कि स्वान टेलीकॉम में भी अनिल अम्बानी का पैसा लगा हुआ था जिसे कानूनी पाबन्दियों से बचने के लिए खड़ा किया गया था। इसी से सम्बन्धित दूसरे मामले में सी बी आई ने एस्सार ग्रुप के प्रमोटर रवि रुइया व अंशुमान रुइया, और एस्सार ग्रुप द्वारा ही खड़ी की गयी कम्पनी लूप टेलीकॉम के प्रमोटर किरण खेतान व आई पी खेतान और एस्सार ग्रुप के निदेशक विकास श्राफ़ को भी षड्यन्त्र रचने और शैल कम्पनी बनाके सस्ते में लाइसेंस हासिल करने के आरोप में केस दर्ज किया। चार्जशीट में अलग से लूप टेलीकॉम लिमिटेड, लूप इण्डिया मोबाइल लिमिटेड और एस्सार टेली होल्डिंग लिमिटेड कम्पनियाँ भी आरोपी हैं। अक्टूबर 2011 में कोर्ट ने इन सभी लोगों के खिलाफ़ आपराधिक षड्यन्त्र, धोखाधड़ी, फ़र्जीवाड़ा, फ़र्जी कागज़ात बनाने, पद का दुरुपयोग, सरकारी दुराचरण आदि के आरोप तय किये गये थे।

क्या आरोपियों का बरी होना

उनकी बेगुनाही को साबित करता है?

अब यह समझने की ज़रूरत है कि इतना बड़ा घोटाला जिसमें 154 लोगों ने गवाही दी और 4400 पेज की चार्जशीट बनी, जिसके चलते सत्ता परिवर्तन हो गया उसमें कोई आरोप सिद्ध क्यों नहीं हुआ। आज़ादी के 70 सालों के इतिहास पर सरसरी निगाह दौड़ाने भर से यह स्पष्ट हो जाता है कि मौजूदा न्याय व्यवस्था में किसी अपराधी को सज़ा मिलना उसकी सामाजिक हैसियत पर निर्भर करता है। किसी मुक़दमे की दिशा इससे तय होती है कि जाँच एजेंसी कितनी ईमानदारी से सारे सबूत जुटाती है और अभियोजन एजेंसी कितने योजनाबद्ध तरीक़े से मामले को अदालत के सामने पेश करती है। इस देश में पूँजीपतियों और राजनेताओं से जुड़े मुक़दमों में जाँच और अभियोजन एजेंसियों के ढिलाई से काम करने का लम्बा इतिहास रहा है। सबूतों के साथ छेड़छाड़, फ़र्जी सबूतों का निर्माण और सबूतों को पेश करने में ढिलाई जैसे तमाम पैतरे हैं जिन्हें अपनाकर सीबीआई जैसी जाँच और

अभियोजन एजेंसी मुक़दमे का रख पूरी तरह पलट सकती है। पूँजीपति और राजनेताओं के मुक़दमे राम जेठमलानी, हरीश साल्वे, कपिल सिब्बल, अरुण जेटली बड़े वकील लड़ते हैं जिनकी एक सुनवाई की फ़ीस लाखों में होती है। ऐसे वकीलों को वे सारे दाँव पेंच आते हैं जो अपराधी को निर्दोष और निर्दोष को अपराधी साबित कर दें और तो और अब तो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों तक पर रिश्तखोरी में लिप्त होने के आरोप सामने आ चुके हैं। ऐसे में अगर कोई किसी अदालत के निर्णय के आधार पर किसी मामले के बारे में अपनी राय बनाता है तो उसे हद दर्जे का भोला व्यक्ति कहा जायेगा या परले दर्जे का मूर्ख।

2जी घोटाले के मामले में न्यायधीश ओ. पी. सैनी ने सीबीआई को मुक़दमे को सही तरीक़े से नहीं पढ़ने और कोई ठोस सबूत न पेश करने के लिए जिम्मेदार ठहराया है। न्यायधीश ने यह भी कहा कि जो सीबीआई मुक़दमे की शुरुआत में काफ़ी उत्साह से सबूत पेश करता नज़र आया और वो केस के बीच में दिशाहीन दिखायी पड़ने लगा। यहाँ तक कि सीबीआई के निदेशक का असामयिक ट्रांसफ़र और नये निदेशक के आते ही मामले में ढिलाई साफ़ नज़र आयी। अन्त में सीबीआई के तरफ़ से केस लड़ रहे बड़े अधिकारियों में सामंजस्य एकदम खत्म हो गया और यहाँ तक कि वो लोग किसी भी शासकीय कागज़ पर साइन करने से कतराते हुए भी दिखायी पड़े। जज ओ. पी. सैनी का यह कथन अभियोजन पक्ष के बारे में काफ़ी कुछ बतलाता है।

मोदी सरकार के 2014 में सत्ता पर आने के बाद आनन्द ग़ोवर को विशेष लोक अभियोजक के रूप में लाया गया और उसके बाद से मामला और कमजोर पड़ता चला गया। ज़ाहिर सी बात है कि चुनाव में इस मुद्दे से जो फ़ायदा मिलना था, वो मोदी व भाजपा को मिल चुका था और इस मामले में जिन लोगों पर आरोप लगे थे, वो बड़े पूँजीपति हैं। जहाँ एक तरफ़ इसमें धन्ना सेठ अनिल अम्बानी की कम्पनी और उसके तीन शीर्ष के अधिकारी शामिल थे तो दूसरी तरफ़ धनपशु रूइआ परिवार के दो सदस्य क्या आज कोई भी सरकार इनको जेल भिजवा सकती है? मोदी तो इन सभी उद्योगपतियों को अपने साथ में विमान में लेकर घूमते हैं। ये वही अनिल अम्बानी है जिस पर बैंकों के लाखों करोड़ रुपये का कर्ज़ बक़ाया है और फिर भी उसे मोदी के राज में राफ़ेल विमान का बड़ा सौदा मिल जाता है। रूइआ को जब 2जी मामले में ही अदालत ने देश के बाहर जाने से रोक दिया तो प्रधानमन्त्री कार्यालय से अदालत को पत्र भिजवाया गया जिससे रूइआ मोदी के साथ रूस की यात्रा पर जा सके और रोसनेफ़्ट के साथ व्यापारिक करार कर सके। उद्योगपतियों और राजनीति में शीर्ष पर बैठे लोगों के बीच जब ऐसे गँठजोड़ दिखायी पड़ते हैं तो आश्चर्य नहीं होता कि सीबीआई ने केस में

ढिलाई क्यों की। यही नहीं, तमिलनाडु की राजनीति में भाजपा को पैर ज़माने की इच्छा के चलते पिछले महीने ही मोदी का द्रमुक सुप्रीमो करुणानिधि से मिलना भी यही संकेत देता है कि मौजूदा परिस्थितियों में मोदी के लिए यही सबसे हितकारी था कि ए राजा और कनिमोड़ी भी बरी हो जायें।

2जी स्पेक्ट्रम घोटाले पर मज़दूर वर्ग का दृष्टिकोण

मज़दूर वर्ग के दृष्टिकोण से देखा जाये तो जिसे 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला कहा गया वो दरअसल इस मामले में हुई कुल लूट का एक बेहद छोटा-सा हिस्सा था। इस घोटाले पर मीडिया में ज़ोरशोर से लिखने वाले तमाम प्रगतिशील रज़ान वाले पत्रकार और बुद्धिजीवी भी कभी यह सवाल नहीं उठाते कि आखिर इलेक्ट्रोमैग्नेटिक स्पेक्ट्रम जैसे प्राकृतिक संसाधन, जो जनता की सामूहिक सम्पदा है, को किसी भी क्रीमत पर पूँजीपतियों के हवाले क्यों किया जाना चाहिए। जिन लोगों को दिक्कत सिर्फ़ इस बात से है कि स्पेक्ट्रम के आवण्टन की प्रक्रिया पारदर्शी नहीं थी, उनसे पूछा जाना चाहिए कि अगर यह प्रक्रिया पारदर्शी होती और उससे सरकारी राजस्व में 1 लाख 76 हजार करोड़ रुपये अतिरिक्त आ भी जाते तो उस परिस्थिति में क्या इसे लूट नहीं कहा जाना चाहिए? हमारे दृष्टिकोण से नदियाँ, पहाड़, कोयला, खनिज और स्पेक्ट्रम जैसे प्राकृतिक संसाधनों का कोई मोल नहीं लगाया जा सकता है और उन्हें चाहे जिस भी प्रक्रिया के तहत पूँजीपतियों के हवाले किया जाये, उसे लूट ही कहा जाना चाहिए। परन्तु पूँजीवाद के तहत यह लूट बिल्कुल न्यायसंगत और संविधानसंगत है। पूँजीवाद के पैरोकारों को दिक्कत सिर्फ़ इस बात से है कि इस लूट में सभी लुटेरों को बराबर का मौक़ा नहीं देकर कुछेक लुटेरों को तरजीह दी गयी। ऐसे लोग एक सन्त पूँजीवाद की कल्पना करते हैं जिसमें लूट की प्रक्रिया में पूरी ईमानदारी बरती जायेगी। ये बात दीगर है कि ऐसे पूँजीवाद का अस्तित्व उनकी कल्पनाओं के अलावा और कहीं नहीं है। लेकिन हमें दिक्कत केवल लूट की अपारदर्शी प्रक्रिया से नहीं बल्कि लूट-खसोट पर टिकी इस समूची पूँजीवादी प्रणाली से है जिसमें जनता की सामूहिक सम्पदा को मुट्ठी-भर पूँजीपतियों के हवाले किया जा रहा है। लेकिन त्रासदी यह है कि इस व्यवस्था में सरकार किसी भी पार्टी की बने, नदियों, जंगलों, पहाड़ों, खनिजों और स्पेक्ट्रम की यह बेहिसाब लूट बदस्तूर जारी है लेकिन इसे घोटाले का नाम नहीं दिया जा रहा है क्योंकि यह लूट पारदर्शी तरीक़े से हो रही है। ऐसे में न्याय तभी मिल सकता है जब जनता की सम्पत्ति लूटने वालों की सम्पत्ति का हरण करके उसे वापस जनता के हवाले कर दिया जाये। ज़ाहिर है कि इस ऐतिहासिक न्याय के लिए हमें किसी अदालत पर नहीं बल्कि प्रचण्ड जनक्रान्ति के वेगवाही तूफ़ान पर भरोसा करना होगा।

बेहिसाब बढ़ती आर्थिक और सामाजिक असमानता

मुकेश असीम

मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक असमानता की स्थिति बताने के लिए बहुत सारे आँकड़े दोहराने की भी आज ज़रूरत नहीं रह गयी है क्योंकि अब तो खुद पूँजीवादी अर्थशास्त्री और बुद्धिजीवी भी इस बात से इंकार नहीं कर पा रहे हैं कि दुनिया भर में आर्थिक असमानता बेहद तेज़ चाल से बढ़ रही है। भारत तो इनमें से भी सर्वाधिक ग़ैरबराबरी वाले चन्द देशों में से है। यहाँ तो शीर्ष पर के 10% अमीर लोग 2010 में 69% सम्पत्ति के मालिक थे और तब से सिर्फ़ 6 वर्षों में ये बढ़कर 2016 में 81% दौलत पर क़ब्ज़ा जमा चुके हैं। वहीं तली के 50% पूरी तरह सम्पत्तिहीन ही नहीं, बल्कि क़र्ज़ में किसी तरह मालिकों के लिए श्रम करते हुए जीवन बिताने को विवश हैं।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के शीर्ष पर जिनकी दौलत लगातार बढ़ रही है वे कौन लोग हैं? क्या ये वंचित-दलित समूहों के लोग हैं? नहीं, ये तो समाज के शासक अभिजात वर्ग से ही हो सकते हैं, हमारे देश में जिसका अधिकांश भाग आज भी सवर्ण कहे जाने वाले समुदायों से आता है, हालाँकि ज़मींदारी की समाप्ति, हरित क्रान्ति और पूँजीवादी विकास दौर के बाद पिछड़ी जातियों में से भी एक छोटे भूपति हिस्से ने भी इसमें कुछ हिस्सेदारी हासिल कर ली है; जहाँ तक दलित-आदिवासी समुदायों की बात है उनमें इनकी तादाद अभी भी अत्यन्त अल्प है। इसके विपरीत तली पर और भी विकराल, निर्मम होते शोषण की मार झेलने वाले कौन हैं - क्या ये ब्राह्मणवादी सवर्ण तबक़े से आते हैं? अगर किसी को सच में ही ऐसा लगता हो तो उसके साथ कोई तर्क नहीं किया जा सकता! यह बिल्कुल दिन के उजाले की तरह साफ़, स्पष्ट है कि हमारे समाज में सबसे नीचे का यह तबक़ा आज भी अधिक संख्या में उन वंचित - दलित, आदिवासी, पिछड़े - समुदायों से आता है जो इतिहास में एक लम्बे वक़्त से आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हर तरह से बिल्कुल हाशिये पर रखे गये थे, यद्यपि सवर्ण कहे जाने वाले समुदायों में से भी एक हिस्सा अब पूँजीवादी शोषण से बरबाद होकर अब शोषित तबक़े का अंग बन चुका है।

आय एवं सम्पत्ति का यह बेतहाशा केन्द्रीकरण किस आर्थिक व्यवस्था का परिणाम है? क्या ज़मींदारी, सामन्ती अर्थव्यवस्था का? अगर आज की स्थिति में भी कोई यह जवाब दे तो इस जवाब वालों के साथ भी कोई कैसे और क्या तर्क करे? यह केन्द्रीकरण तो हो रहा है निजी सम्पत्ति और अधिकतम मुनाफ़े के लिए माल उत्पादन करने वाली पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था द्वारा जिसमें आधे से अधिक सम्पत्तिहीन लोगों के पास किसी तरह जीवन यापन का मात्र एक ही रास्ता है - हर रोज़ खुद को बेचना अर्थात् अपनी श्रम शक्ति को किसी पूँजीपति मालिक को बेचना, जिसके बदले में उन्हें मात्र किसी तरह

ज़िन्दा रहने लायक मुआवज़ा मिलता है और उनके श्रम का अधिकांश उत्पाद पूँजीपति द्वारा क़ब्ज़ा लिया जाता है जिससे उसका मुनाफ़ा और पूँजी रूपी दौलत बढ़ती जाती है। जब तक समाज में उत्पादन के सभी साधनों अर्थात् पूँजी/ सम्पत्ति पर इन पूँजीपतियों के मालिकाने को समाप्त कर इन पर सामूहिक मालिकाना क़ायम न किया जाये, तब तक शोषण से मुक्ति और वास्तविक समानता वाले समाज का निर्माण किसी हालत में मुमकिन नहीं है क्योंकि जिनके हाथ में सारी पूँजी है वे ही समस्त रूपों में राजनीति, क़ानून, शिक्षा, संस्कृति, मीडिया, धर्म, नैतिकता के भी मालिक हैं अर्थात् इन सब चीज़ों का कारोबार भी उन्हीं के नियन्त्रण में चलता है। सम्पत्तिहीन सर्वहाराओं ने सरमायेदारों के इस निजी मालिकाने को समाप्त कर ऐसी आर्थिक व्यवस्था स्थापित करनी होगी जिसमें न केवल हर व्यक्ति को जीवन निर्वाह के लिए बग़ैर खुद को दूसरे व्यक्ति को बेचने की मज़बूरी रहित समुचित रोज़गार उपलब्ध हो, बल्कि जीवनयापन हेतु हर व्यक्ति को किसी न किसी तरह का श्रम करना ही पड़े, किसी को भी दूसरे मनुष्य के श्रम के उत्पादन पर ज़िन्दा रहने का विशेषाधिकार हासिल न हो सके।

इस बात में बहुत सरलीकरण तो है पर यही मार्क्सवाद का एक मूल सिद्धान्त है कि किसी भी समाज में मनुष्यों के बीच के तमाम आपसी रिश्तों-नातों को निर्धारित करने में धर्म, नस्ल, लिंग, जाति, इतिहास, संस्कृति, परम्पराओं आदि की एक अत्यन्त अहम भूमिका तो ज़रूर है लेकिन खुद को बेचने की मज़बूरी वाला व्यक्ति कभी भी खुद को ख़रीदने वाले मालिक के साथ किसी तरह की समानता हासिल नहीं कर सकता; चाहे उस समाज के संविधान, क़ानून, धर्म, नैतिकता, आदि में इसके कितने भी प्रावधान, दावे क्यों न किये गये हों, यह सब असली ज़िन्दगी में खोखले ही सिद्ध होते हैं। उस समानता को वास्तविकता में हासिल करने के लिए मनुष्यों के बीच ख़रीदने-बेचने के हर तरह के रूपों वाली व्यवस्था को जड़ मूल से ख़त्म कर देना क़तई ज़रूरी है। इस काम को किये बग़ैर सारे नैतिक, राजनीतिक, क़ानूनी, सांस्कृतिक, धार्मिक आन्दोलन अपनी तमाम इमानदारी, सिद्धान्तों और बलिदानों के बावजूद भी शोषण की समाप्ति नहीं कर सकते। इसी बात को लेकर बहुत से लोग कहते हैं कि मार्क्सवादी तो बस आर्थिक सम्बन्धों को ही मुख्य मानते हैं, वे सामाजिक शोषण की उपेक्षा करते हैं।

विशेष तौर पर अम्बेडकरवादियों व अन्य सामाजिक न्यायवादियों की ओर से कहा जाता है कि मार्क्सवाद भारत में इसलिए संगत और उपयुक्त नहीं है क्योंकि वह आर्थिक शोषण को ही मुख्य मानता है जबकि भारत में सामाजिक शोषण सबसे बड़ी समस्या है और इसके जारी रहते आर्थिक शोषण के खिलाफ़ लड़ाई हो ही नहीं सकती।

उनका यह भी कहना है कि मार्क्सवादी सामाजिक शोषण के दर्द को महसूस नहीं करते इसलिए मात्र इस दर्द को अपने जीवन में झेल रहे व्यक्ति ही इसके खिलाफ़ इमानदारी से संघर्ष कर सकते हैं। इस सामाजिक शोषण को दूर कर सामाजिक न्याय क़ायम करने के लिए इनके द्वारा वर्तमान व्यवस्था के सभी अंगों में भागीदारी - 'जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी भागीदारी' को मुख्य समाधान के तौर पर प्रस्तुत किया जाता है। यह काम आरक्षण व्यवस्था के द्वारा ही किया जा सकता है इसलिए सामाजिक शोषण की समाप्ति के संघर्ष का मुख्य नारा समाज के प्रत्येक क्षेत्र में जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण और उसका पूरी इमानदारी से लागू किया जाना बन जाता है। यहाँ यह साफ़ कर देना ज़रूरी है कि सभी समुदायों की भागीदारी का सिद्धान्त अपने आप में कोई ग़लत सिद्धान्त नहीं है। सवाल सिर्फ़ यह है कि क्या पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था के शोषण के रहते हुए ही मात्र भागीदारी से सामाजिक शोषण और अत्याचार को समाप्त किया जा सकता है?

इसको समझने के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं। टाइम्स ऑफ़ इण्डिया में 3 जनवरी 2017 को प्रकाशित समाचार से पता चलता है कि बेजवाड़ा विल्सन के नेतृत्व वाले सफ़ाई कर्मचारी आन्दोलन द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण में पाया गया कि पिछले 10 सालों में देश भर में 1344 सफ़ाई कर्मियों की मृत्यु सीवर-गटर में काम करते हुए हुई है। इसमें सबसे बड़ी तादाद 294 तमिलनाडु राज्य की है, जो कुल मौतों का 22% है अर्थात् हर 4 में से एक से थोड़ा ही कम! वैसे तो इन मौतों की निरन्तर आती ख़बरों से यह संख्या भी वास्तविक संख्या से काफ़ी कम ही लगती है, फिर भी इसके आधार पर भी कुछ समझा जाना ज़रूरी है। हम सभी जानते हैं कि सीवर-गटर में उतरकर सफ़ाई का अत्यन्त अमानवीय कार्य दलित कर्मियों द्वारा किया जाता है और भारतीय राज्य व्यवस्था की मशीनरी इनकी ज़िन्दगी की कोई क्रीम न मानते हुए इनके लिए कोई सुरक्षात्मक प्रबन्ध नहीं करती इसलिए इतनी बड़ी तादाद में ये मृत्यु होती हैं।

लेकिन तमिलनाडु वह राज्य है जिसमें महाराष्ट्र के साथ ही ब्राह्मणवाद विरोधी वैचारिक-सांस्कृतिक आन्दोलन का सबसे लम्बा इतिहास है; बल्कि वहाँ यह सबसे शक्तिशाली और प्रभावी राजनीतिक आन्दोलन है और पिछले 50 वर्षों से वहाँ निरन्तर ब्राह्मणवाद विरोधी विचारधारा वाले राजनीतिक दलों की सरकार चली आयी है। वहाँ आरक्षण भी सर्वाधिक - 69% - ही नहीं है, बल्कि लागू भी सर्वाधिक बेहतर तरीक़े से किया गया है। 1927 में ही मद्रास राज्य में नौकरियों के लिए निम्न आरक्षण व्यवस्था की गयी थी - 12 में से 2 ब्राह्मण, 5 ग़ैर ब्राह्मण हिन्दू, 2 मुस्लिम, 2 एंग्लोइण्डियन, 1 अनुसूचित जाति। फिर भी राज्य व्यवस्था द्वारा

सुरक्षा का कोई इन्तज़ाम न होने से शोषित-पीड़ित दलित सफ़ाई कर्मी सबसे अधिक इसी राज्य में मृत्यु का शिकार हो रहे हैं, क्या इससे कुछ सवाल खड़े नहीं होते? इसी तरह अन्तर्जातीय विवाहों के बाद 'ऑनर किलिंग' के नाम पर दलितों की हत्याओं की ख़बरें भी इस राज्य से लगातार आती रहती हैं। आखिर भागीदारी सुनिश्चित होने से भी इस राज्य में सामाजिक शोषण में कमी क्यों नहीं आयी?

यह उदाहरण दर्शाता है कि आरक्षण के अधिकार ने दलित, पिछड़ों, आदिवासियों के लिए शिक्षा और रोज़गार में प्रवेश के रास्ते खोले और उनके एक हिस्से को अत्यन्त ग़रीबी और वंचना भरे जीवन से मुक्त होकर तरक्की भी हासिल हुई। इस नाते यह एक प्रगतिशील व्यवस्था थी। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था में मात्र आरक्षण से सबसे ग़रीब कमजोर तबक़ों के जीवन से अन्याय नहीं मिटाया जा सकता। सम्पत्तिहीन, अपनी श्रम शक्ति बेचने को मजबूर सर्वाधिक वंचित, ग़रीब लोग फिर भी शोषित तथा मजबूर ही रह जाते हैं क्योंकि आरक्षण सिर्फ़ पूँजीवाद में उपलब्ध अत्यन्त सीमित शिक्षा-रोज़गार के अवसरों में से ही हिस्सा बाँटता है, सबको शिक्षा और रोज़गार नहीं दे सकता। अब तो शिक्षा के अत्यन्त महँगा होने व औपचारिक रोज़गार सृजन में भारी गिरावट की वजह से पहले से ही सीमित ये अवसर और भी न्यून होते जा रहे हैं। इसलिए मात्र जनसंख्या के अनुपात में हिस्सेदारी-भागीदारी वाले आरक्षण का नारा सबसे ग़रीब दलित-पिछड़ी जनता के हितों के अनुरूप नहीं है, उनको सामाजिक या शोषण के किसी भी अन्य रूप से मुक्त नहीं कर सकता। मौजूदा व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में भी जनवादी अधिकारों की बात हो तो इनके लिए तो अनिवार्य समान सार्वजनिक शिक्षा और सबके लिए न्यूनतम जीवन निर्वाह योग्य मज़दूरी वाला रोज़गार का सवाल ही असली सवाल है। इसलिए यह समझना ज़रूरी हो जाता है कि सामाजिक शोषण के उन्मूलन के लिए ब्राह्मणवाद का विरोध ज़रूरी तो है लेकिन शिक्षा, रोज़गार के वास्तविक सवाल को पीछे छोड़कर किया गया ब्राह्मणवाद विरोध खोखला

विरोध ही बनकर रह जाता है क्योंकि सर्वाधिक कमजोर, मजबूर लोग फिर भी उसी सामाजिक शोषण, अत्याचार का शिकार ही रह जाते हैं क्योंकि ज़िन्दा रहने के लिए श्रम शक्ति के बाज़ार में खड़ा रहने की उनकी विवशता उन्हें भागीदारी के जनवादी अधिकार से भी वंचित कर देती है।

इसलिए यह कहना ज़रूरी है कि समाज में मनुष्यों के बीच ख़रीदने-बेचने के वर्तमान रिश्तों को समाप्त किये बग़ैर ही सामाजिक या आर्थिक किसी भी तरह के शोषण से मुक्ति और समानता स्थापित नहीं हो सकती। जिसको ऐसा लगता है कि इसके बिना ही यह काम किया जा सकता है वह अपने खयालों में मस्त रहने के लिए आज़ाद हैं, पर खुद को बेचने के लिए मजबूर इंसान, खुद को ख़रीदने वाले शख्स की बराबरी कभी हासिल नहीं कर सकता, यही सामाजिक विज्ञान की अकाट्य सच्चाई है। कुछ भी बड़ी-बड़ी बातें क्यों न करें पर ख़रीदने वाले सरमायेदार मालिकों को और भी अमीर बनाती तथा शोषित-वंचित सर्वहारा, जिसमें अधिकांश दलित, पिछड़े, आदिवासी हैं, को और भी भयंकर कंगाली और दुर्दिनों में धकेलती पूँजीवादी व्यवस्था के हिमायती मानव मर्यादा और समानता के हिमायती नहीं हो सकते।

सिर्फ़ दर्द महसूस करने से ही दर्द दूर नहीं किया जा सकता; दर्द की वजह समझकर उपयुक्त दवा या सर्जरी करने से ही दर्द का इलाज हो सकता है! उसके लिए सिर्फ़ भावना से काम नहीं चलेगा, शोषण से मुक्ति का विज्ञान भी सीखना ही होगा। मार्क्सवाद वही विज्ञान है। हाँ, मार्क्सवाद के विज्ञान का डॉक्टर बनने के लिए किसी पर किसी मनुस्मृति, आदि की भी कोई रोक नहीं है, जो शोषण से मुक्ति के संघर्ष में उतरना चाहे, वह इसका अध्ययन और प्रयोग कर सकता है! मार्क्सवाद पर आज भी दुनिया में किसी धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, राष्ट्रीयता का क़ब्ज़ा नहीं - जिन्हें शोषण से मुक्ति चाहिए उन्हें आगे बढ़कर इस पर अधिकार जमाने से कोई नहीं रोक सकता, इसलिए फ़लों ने इस पर क़ब्ज़ा किया हुआ है, यह शिकायत तो न ही करें!

मोदी और पेट गैस की गोलियों में क्या संबंध है!

नवम्बर में औद्योगिक उत्पादन 8.4% बढ़ने के आंकड़े जारी करने के बाद मोदी सरकार और उसके भोंपू अर्थशास्त्री विशेषज्ञ अर्थव्यवस्था में फिर से तेजी का राग अलाप रहे हैं! पर लिंक में दिए औद्योगिक उत्पादन के आंकड़े के पैराग्राफ़ 8 को पढ़ें तो कुल उत्पादन वृद्धि में से 2.5% वृद्धि तो सिर्फ़ पेट गैस की गोलियों और पाचन शक्ति बढ़ाने वाले टॉनिकों से हुई बताई गई है, जबकि कुल औद्योगिक उत्पादन में इनका कुल हिस्सा (weightage) चौथाई प्रतिशत से भी कम होता है - 0.22%! ऐसा पहली बार नहीं हो रहा

है - ये पेट गैस की गोलियों का चक्कर पिछले साल भी था! अब ये इतनी पेट गैस की गोलियाँ कौन खा रहा है?

इसके बाद बाकी बचता है 5.9% - वो इसलिए क्योंकि पिछले साल के नवम्बर में नोटबंदी ने उत्पादन की कमर तोड़ दी थी, तो इस साल का सामान्य उत्पादन भी उसके मुकाबले बढ़ा हुआ ही दिखता है।

तो इन आंकड़ों को देखसुनकर ख़्वाब मत देखने लगियेगा कि अर्थव्यवस्था सुधर रही है, रोज़गार बढ़ेगा, मज़दूरी-वेतन बढ़ेगा!

- मुकेश

सत्तारूढ़ फ़ासिस्टों की आलमारी में छिपे कंकालों की खड़खड़ाहट तेज़ होती जा रही है

(पेज 1 से आगे)

तोगड़िया अहमदाबाद में पहले लापता हो गये और फिर एक पार्क में बेहोशी की हालत में पाये गये। मुसलमानों के खिलाफ़ आग उगलते भाषण देने वाले तोगड़िया जी ने अगले दिन प्रेस के सामने टसुए बहाते हुए रो-रोकर बताया कि उनको फ़र्जी एन्काउण्टर में मारने की साज़िश की जा रही है। गुजरात में इशरत जहाँ से लेकर दर्जनों लोगों की एन्काउण्टर में हुई हत्याओं पर जश्न मनाने वाले इस रोटड़िये का डरना स्वाभाविक था क्योंकि ऊपर बैठे 'एन्काउण्टर किंग' के दिशानिर्देशन में चलने वाली फ़र्जी मुठभेड़ों की पूरी मशीनरी से यह अच्छी तरह वाकिफ़ है। काम निकलने के बाद सड़क किनारे फेंक दिये गये आडवाणी, मुरलीमनोहर जोशी, यशवन्त सिन्हा, अरुण शौरी आदि हों या निपटा दिये गये गुजरात के गृहमंत्री हरेन पाण्ड्या हों, या फिर जान बचाने की गुहार लगा रहा तोगड़िया हो – इनके हथ में कुछ भी हैरानी की बात नहीं है। यह फ़ासिस्टों के खून में है। इनके आराध्यदेव हितलर ने सिर्फ़ कम्युनिस्टों और यहूदी अल्पसंख्यकों के ही सामूहिक हत्याकाण्ड नहीं कराये थे, बल्कि अपने कई विश्वस्त सहयोगियों और अतीत के मददगारों को भी ठिकाने लगाया था।

दरअसल पूँजीवादी व्यवस्था के गहरे संकट के समाधान के तौर पर लायी गयी मोदी की फ़ासिस्ट सत्ता खुद संकट में फँसी हुई है। चुनाव के समय किये गये लम्बे-चौड़े दावे और वायदे पूरे करने की दूर-दूर तक कोई सम्भावना नहीं है। उल्टे बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी, छँटनी और सरकारी तथा कॉरपोरेट लूट-खसोट से तबाह जनता की बेचैनी बढ़ती जा रही है जिसको काबू में रखने और ध्यान बहकाने के लिए उन्हें नयी-नयी नौटंकियाँ करनी पड़ रही हैं, नफ़रत फैलाने के नये-नये हथकण्डे अपनाने पड़ रहे हैं। "महान नेता" के "अजेय नेतृत्व" का आभामण्डल कमजोर पड़ने के साथ ही फ़ासिस्टों की जमातों के बीच से भी कोई न कोई फुदककर कुछ सवाल उठा दे रहा है। आने वाले दिनों में यह सब और बढ़ सकता है। कभी सत्ता के ढाँचे के भीतर से ही कोई नौकरशाह, तो कभी कोई जज, और कभी खुद सत्तारूढ़ फ़ासिस्ट पार्टी के भीतर से विद्रोह करके कुछ व्यक्ति फ़ासिस्ट सत्ता के अत्याचार-अनाचार और कुछ नीतियों पर सवाल उठा सकते हैं। लेकिन इस पर ज़रूरत से ज़्यादा खुश होना घातक है। इससे बस इतना होगा कि सत्ता-तंत्र की कलाई खोलने में कुछ मदद मिलेगी।

सुप्रीम कोर्ट के चार जजों द्वारा मुख्य न्यायाधीश की सरकारपरस्ती के खिलाफ़ विद्रोह करना सिर्फ़ इतना ही बताता है कि व्यवस्था का संकट अत्यन्त गहरा है और इसके कारण उसके अन्दरूनी अन्तरविरोध फूट-रिसकर बाहर आने लगे हैं। किसी प्रभावी जनान्दोलन के अभाव में सत्ता के शीर्ष पर बैठा फ़ासिस्ट गिरोह इस

संकट को भी किसी-न-किसी तरह 'मैनेज' कर लेगा और फिर सबकुछ पहले की तरह चलने लगेगा। कोई भी बुर्जुआ संसदीय पार्टी आज बुर्जुआ जनवाद को भी बचाने के लिए सड़कों पर उतरने की कुव्वत नहीं रखती। संसदीय वामपंथियों की हालत भी इनसे कुछ बेहतर नहीं। जनवाद-रक्षा के लिए बने बौद्धिक मंचों की समय-समय पर होने वाली प्रतीकात्मक कार्रवाइयों से फ़ासिस्टों को खुजली भी नहीं होती।

न्यायिक व्यवस्था में उपजा हालिया संकट

इस बात को भूलने की ज़रूरत नहीं है कि अपने शुद्धतम रूप में भी यह न्यायपालिका पूँजीपति वर्ग की ही सेवा करती है। गरीबों, मेहनतकशों और आम नागरिकों के अधिकारों पर खासकर पिछले तीन दशकों में हुए हमलों में न्यायपालिका की न केवल सहमति, बल्कि भागीदारी रही है। लेकिन इस व्यवस्था को बनाये रखने के लिए पूँजीवादी तंत्र के मानकों और नियम-क़ायदों की विश्वसनीयता को एक हद तक बचाये रखना भी न्यायपालिका की ज़िम्मेदारी होती है। जब कोई खेल के नियमों से ज़्यादा ही छूट लेने लगता है तब "न्यायिक सक्रियता" किसी न किसी रूप में दिखायी देती है। वरना निचली अदालतों से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक में फैले भयंकर भ्रष्टाचार के बारे में कौन नहीं जानता! जजों के नाम लेकर तथ्यों सहित कितनी ही बार आरोप लगाये गये हैं लेकिन कभी कोई जाँच

कॉलेज को बचा रहे थे। वकील प्रशांत भूषण ने जब अदालत में सवाल उठाया कि जस्टिस दीपक मिश्र खुद इस मामले में पार्टी हैं तो वे कैसे इसकी सुनवाई कर सकते हैं। इस पर दीपक मिश्र ने कहा कि अदालत की अवमानना का केस कर देंगे। हालाँकि प्रशान्त भूषण के ललकारने पर भी उन्होंने ऐसा किया नहीं और अपने चमचे वकीलों से अदालत में शोर-शराबा कराते रहे।

मोदी के सत्ता में आने के कुछ ही महीने बाद पूर्व मुख्य न्यायाधीश पलानीस्वामी सदाशिवम को केरल का राज्यपाल बना दिया गया था। यह नयी परिपाटी यँ ही नहीं शुरू हुई थी, ये उनका ईनाम था। सदाशिवम सुप्रीम कोर्ट की उस बेंच में थे जिसने सोहराबुद्दीन शेख फ़र्जी एन्काउण्टर मामले में अमित शाह के खिलाफ़ दूसरी एफ़आईआर को रद्द कर दिया था। 9 अगस्त, 2016 को अरुणाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री कालिखो पुल ने फ़ाँसी लगा ली थी। पुल एक कांग्रेसी नेता थे, जो 2015 में कांग्रेस के ही नबाम तुकी की सरकार के खिलाफ़ बगावत करके मुख्यमंत्री बने थे। करीब साढ़े चार महीने बाद सुप्रीम कोर्ट द्वारा तुकी की सरकार की बर्खास्तगी को असंवैधानिक करार दे दिया गया था। पुल ने 13 जुलाई 2016 को कोर्ट का फैसला आने के बाद इस्तीफ़ा दे दिया और महीने भर के भीतर आत्महत्या कर ली। एक दिन पहले उन्होंने 60 पेज का सुसाइड नोट लिखा था जिसमें संवैधानिक पदों पर बैठे विभिन्न लोगों पर गम्भीर आरोप लगाये हैं। इस नोट

कर दिया गया। सीबीआई ने इस फैसले के विरुद्ध अपील भी नहीं की। मामला दबा रहा। कुछ साल बाद जज लोया के परिवार वालों ने हिम्मत की और उनकी मौत से जुड़े तमाम सन्दिग्ध तथ्य सामने रखते हुए बयान दियो। 'कारवां' पत्रिका में इस पर विस्तृत खबर छपी लेकिन सरकार और सीबीआई ने कुछ नहीं किया। सुप्रीम कोर्ट में इस मामले की जाँच के लिए दाखिल जनहित याचिका को कोर्ट नंबर 10 में भेजा गया था जिसके प्रमुख न्यायमूर्ति अरुण मिश्र हैं जो शीर्ष अदालत के 25 जजों में वरिष्ठता के लिहाज़ से 10वें नम्बर पर आते हैं। यह भी कहा जा रहा था कि भाजपा के एक करीबी पत्रकार की ओर से यह जनहित याचिका इसीलिए लगायी गयी थी ताकि अपने मनमुआफ़िक जज की अदालत में भेजकर उसे खारिज करा दिया जाये और फिर इस मामले को हमेशा के लिए ठण्डे बस्ते में डाल दिया जाये। फ़िलहाल, चार जजों के सवाल उठाने के बाद जस्टिस अरुण मिश्र ने खुद को उस केस से अलग कर लिया है।

इससे पहले कलकत्ता हाई कोर्ट के जस्टिस कर्णन ने प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिखकर उन 20 जजों के नाम बताये थे जिनपर कर्णन ने भ्रष्टाचार और पैसों की हेराफेरी का आरोप लगाया था। लेकिन उसकी जाँच होने के बजाय कर्णन को ही गिरफ़्तार करके उनका मुँह बन्द कर दिया गया। जस्टिस मार्कण्डेय काटजू कई वर्षों से ऊँची अदालतों में भ्रष्टाचार की बात उठाते आये हैं मगर जाँच कौन करेगा? पूर्व न्याय मंत्री शान्ति भूषण ने सुप्रीम कोर्ट के 16 भ्रष्ट जजों के नाम उदाहरणों के साथ जारी किये थे, मगर नतीजा ढाक के तीन पाता।

इस समय जो संकट पैदा हुआ है उसके केन्द्र में जो मामला है वह सीधे अमित शाह और उनके ज़रिए उनके आक्रा नरेन्द्र मोदी से जुड़ा हुआ है। ऐसे में सत्ता तंत्र एडी-चोटी का जोर लगा देगा इसे निपटाने में। असन्तुष्ट जजों की कुछ बातें सुन ली जायेंगी, कुछ ऊपरी "सुधार" कर दिये जायेंगे और धीरे-धीरे सब फिर पटरी पर आ जायेगा। कुछ लोग चार जजों को जबरन क्रान्तिकारी बनाये दे रहे हैं, या इस संकट को फ़ासिस्टों के अन्त की शुरुआत घोषित किये दे रहे हैं, उन्हें अन्त में निराशा ही हाथ लगेगी। आने वाले दिन फ़ासिस्ट गुण्डों से भीषण लड़ाई के दिन होने वाले हैं। कोई भी खुशफ़हमी पालना घातक होगा और अपने सामने मौजूद असली कठिन कार्यभारों से बचने का बहाना साबित होगा।

दरअसल, ऐसे सारे विभ्रमों की जड़ सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण का अभाव और इतिहास से कोई सबक नहीं लेने की आदत है। आज का फ़ासीवाद बुर्जुआ व्यवस्था के एक ऐसे असाध्य व्यवस्थागत संकट की उपज है, जहाँ से वापस बुर्जुआ जनवाद के "बेहतर दिनों" की ओर लौटना मुमकिन ही नहीं है। इसीलिए बुर्जुआ वर्ग का कोई

भी हिस्सा या उसकी कोई भी पार्टी आज फ़ासीवाद के विरुद्ध प्रभावी ढंग से संघर्ष नहीं कर सकती। मेहनतकशों के विभिन्न जुझारू संगठनों-मंचों-आन्दोलनों का संयुक्त मोर्चा ही फ़ासिस्टों से सड़कों पर मुकाबला कर सकता है। इस मोर्चे के साथ मध्यवर्ग के रैडिकल हिस्से को भी जोड़ा जा सकता है किसी हद तक। यह भूलना नहीं होगा कि फ़ासीवाद मध्यवर्ग का ज़मीनी स्तर से संगठित एक धुर-प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन है, और मेहनतकश वर्गों का एक जुझारू क्रान्तिकारी सामाजिक आन्दोलन ज़मीनी स्तर से खड़ा करके ही इसे शिकस्त दी जा सकती है।

मज़दूर वर्ग और सभी मेहनतकशों को महज़ आर्थिक संघर्षों के गोल-गोल दायरे में घूमने से बाहर लाना होगा, उन्हें क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षा देनी होगी और राजनीतिक माँगों के लिए लड़ने हेतु संगठित करना होगा, ज़मीनी स्तर पर उनकी संस्थाएँ (सोवियत, कम्यून, सिटी कौंसिल, फैक्ट्री कौंसिल जैसी) संगठित करनी होंगी और फिर फ़ासिस्टों का मुकाबला करने के लिए 'फ़ैक्ट्री-100' जैसे मज़दूरों के जुझारू दस्ते बनाने होंगे, जैसाकि कम्युनिस्ट नेतृत्व में जर्मनी के मज़दूरों ने किया था। धर्म और जाति की राजनीति और फ़ासीवाद के विरुद्ध सघन प्रचार एवं शिक्षा का अभियान चलाना होगा। इसी लाइन पर मध्य वर्ग के छात्रों-युवाओं को भी संगठित करना होगा। फ़ासीवाद-विरोधी संयुक्त मोर्चे में सभी मज़दूर वर्गीय संगठनों-मंचों-आन्दोलनों को साथ लाने की कोशिश करनी होगी। आज के समय में ऐसे किसी मोर्चे में किसी भी बुर्जुआ पार्टी के शामिल होने की कोई सम्भावना नहीं है। बुर्जुआ संसदवाद के विरुद्ध मज़दूरों में सतत प्रचार करते हुए रणकौशल के तौर पर संसद का इस्तेमाल भी वांछनीय है। पर मुख्य फैसला संसद में नहीं, सड़कों पर संघर्ष में होगा। आज फ़ासीवाद के विरुद्ध संघर्ष पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष की एक कड़ी है, न कि इसका उद्देश्य किसी किस्म के बुर्जुआ जनवाद की स्थापना है। व्यवस्थागत संकट से ग्रस्त आज के पूँजीवादी समाज में फ़ासीवाद एक प्रभावी और वर्चस्वकारी शक्ति के रूप में अपनी मौजूदगी बनाये रखेगा। यदि फ़ासिस्ट पार्टी सत्ता में न भी रहे तो भी समाज में फ़ासिस्टों का उत्पात जारी रहेगा। जो अन्य बुर्जुआ पार्टियाँ चुनाव जीतकर सत्ता में आयेंगी, वे भी फ़ासिस्टों की आर्थिक नीतियों को ही कुछ हेर-फेर के साथ जारी रखेंगी और निरंकुश दमन के रस्ते पर ही चलेंगी। पूँजीपति वर्ग जंजीर में बँधे शिकारी कुत्ते की तरह फ़ासीवाद के इस्तेमाल का विकल्प अपने हाथों में सुरक्षित रखेगा। इसलिए आज फ़ासीवाद-विरोधी संघर्ष को निर्णायक बनाने का मतलब है पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष को उसके फ़ैसलाकुन अंजाम की दिशा में आगे बढ़ाना।



नहीं हुई।

न्यायपालिका पर सरकारी प्रभाव और उसमें भ्रष्टाचार पहले भी रहा है। फ़र्क सिर्फ़ यह पड़ा है कि व्यवस्था की बढ़ती पतनशीलता के साथ-साथ वह और भी गंगा होता गया है। मोदी सरकार के दौरान चुनाव आयोग से लेकर तमाम सरकारी संस्थाओं को जिस तरह सत्त का चम्पू बनाया गया है, ऐसे में सुप्रीम कोर्ट भी कैसे बचा रह सकता था। ज़ाहिर है, जब सत्ता को अपनी मर्जी से काम कराने हों तो बदले में उन्हें भी मनमानी करने की छूट देनी पड़ेगी। और प्रधान जज साहब तो वैसे भी काफ़ी खेले खाये हुए हैं। उत्तर प्रदेश के प्रसाद एजुकेशन ट्रस्ट के फ़र्जी मेडिकल कॉलेज से जुड़े भ्रष्टाचार के मामले में जस्टिस दीपक मिश्र नियमों को ताक पर धरकर बार-बार खुद ही सुनवाई कर रहे थे और

में यह आरोप भी है कि 2016 में सुप्रीम कोर्ट का फैसला उनके पक्ष में मोड़ने के लिए कुछ दलालों ने उनसे करोड़ों की राशि की माँग की थी। उसमें प्रधान जज साहब के भाई आदित्य मिश्रा का नाम लिया गया था।

सहारा और बिड़ला घरानों के कुछ दफ़्तरों पर छापेमारी के दौरान ज़ब्त कुछ दस्तावेजों में यह बात आयी थी कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को नकद पैसे दिये गये हैं। संसद में यह मामला उठा, अखबारों में खबरें छपीं, लेकिन कोई जाँच तक नहीं हुई। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि ये सबूत पर्याप्त नहीं हैं। फ़र्जी एन्काउण्टर से जुड़े अमित शाह के मामले की सुनवाई कर रहे सीबीआई के विशेष जज ब्रजमोहन लोया की मौत के कुछ समय बाद अमित शाह को बरी

नये साल में मज़दूर वर्ग के सामने खड़ा चुनौतियों का पहाड़

(पेज 1 से आगे)

जलते हुए इंसान की वीभत्स वीडियो का लुप्त उठाते हुए उसे वायरल करने में ज़रा भी हिचक नहीं होती। इसी सामाजिक आधार की बदौलत बेंगलूरु में फ़ासीवाद के खिलाफ़ मुखर पत्रकार गौरी लंकेश की नृशंस हत्या कर दी जाती है और सोशल मीडिया पर उसका सरेआम जश्र मनाया जाता है।

कहने की ज़रूरत नहीं कि ये सबकुछ पूरी तरह से स्वतःस्फूर्त ढंग से नहीं हो रहा है। संघ परिवार का संगठित अफ़वाह तन्त्र, जिसमें व्हाट्सएप, सोशल-मीडिया, ब्लॉग-वेबसाइटों से लेकर मुख्यधारा की प्रिण्ट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया शामिल है, पूरे समाज की पोर-पोर में साम्प्रदायिकता और नफ़रत का ज़हर फैलाने में लगातार सक्रिय है। 'फ़ेक न्यूज़' की परिघटना पहले से मौजूद थी, लेकिन उसने पिछले साल भयावह रूप अख़्तियार कर लिया क्योंकि फ़ेक न्यूज़ की वजह से साम्प्रदायिक तनाव भड़क रहे हैं और लोगों की जानें तक जा रही हैं। स्पष्ट है कि भारत के फ़ासीवादियों ने न सिर्फ़ जर्मनी और इटली के अपने पूर्वजों से प्रेरणा ली है बल्कि उनसे सबक भी लिया है और इसीलिए वे नंगे रूप में तानाशाही और जनसंहार करने की बजाय बुर्जुआ लोकतन्त्र का खोल बरकरार रखते हुए बारीकी से पूरे समाज में नफ़रत के बीज बो रहे हैं। पूरे समाज में ख़ौफ़ व आतंक फैलाने के लिए अब उन्हें गैस चैम्बर व कन्सनट्रेशन कैम्प बनाने की ज़रूरत नहीं है, वे इस काम को बर्बर ढंग से चुनिन्दा योजनाबद्ध हत्याएँ करके अपनी जघन्य करतूतों की वीडियो बनाकर अल्पसंख्यक और उत्पीड़ित तबकों एवं संवेदनशील नागरिकों के दिलों में ख़ौफ़ और आतंक का माहौल लगातार बना रहे हैं।

वर्ष 2017 में फ़ासीवादियों की आक्रामकता बढ़ने का एक अहम कारण अर्थव्यवस्था के मोर्चे पर मोदी सरकार का फिसड्डीपन रहा है। अब तमाम बुर्जुआ अर्थशास्त्री भी यह मानने लगे हैं कि नोटबन्दी और जीएसटी के क्रियान्वयन ने विश्वव्यापी मन्दी की वजह से पहले से ही लचर भारतीय अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ दी है। कृषि क्षेत्र का संकट पिछले साल और गहरा गया जिसका नतीजा देश के विभिन्न हिस्सों में किसानों के आन्दोलन में तेज़ी के रूप में सामने आया। मध्य प्रदेश के मन्दसौर में तो किसानों का आन्दोलन इतना उग्र हो गया कि उसे कुचलने के लिए पुलिस को गोलियाँ चलानी पड़ी जिसमें आधा दर्जन लोग मारे गये। हालाँकि कुछ सरकारों ने कर्ज़ माफ़ी के टोटके के सहारे कृषि संकट को टालने की कोशिश की, लेकिन समय बीतने के साथ ही साथ पूँजीवादी खेती-बाड़ी के संकट से निजात पाने में इस टोटके की अक्षमता जगज़ाहिर हो गयी। इसके अतिरिक्त नोटबन्दी और जीएसटी की वजह से समूचा अनौपचारिक क्षेत्र ठप्प पड़ गया जिसकी वजह से पिछले वर्ष भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर और

निर्यात में भी गिरावट देखने को मिली और साथ ही बेरोज़गारी की दर तेज़ हुई। नवउदारवाद की चौथाई सदी में कुल्लोचे मारने वाले आईटी सेक्टर पर भी पिछले साल मन्दी और छँटनी के काले बादल छाये रहे। उधर बड़े-बड़े कॉरपोरेट घरानों द्वारा दसियों लाख करोड़ रुपये के कर्ज़ का भुगतान न करने की वजह से बैंकों की हालत भी गुजरे साल बंद से बदतर हुई। आने वाले दिनों में भी अर्थव्यवस्था में कोई विचारणीय सुधार होने के कोई आसार नहीं नज़र आ रहे हैं। रिज़र्व बैंक के पूर्व गवर्नर वाई.वी. रेड्डी ने हाल ही में यह बयान दिया है कि नोटबन्दी और जीएसटी से हुए नुक़सान से पूरी तरह उबरने में अर्थव्यवस्था को अभी दो वर्ष से भी अधिक का समय लगेगा। मॉर्गन स्टैनली जैसे साम्राज्यवादी थिंकटैंक भी भारतीय अर्थव्यवस्था की खस्ता हालत पर आँसू बहा रहे हैं। ऐसे में ज़ाहिर है कि 2019 के आम चुनावों के मद्देनज़र जंजीर में बंधे फ़ासिस्ट कुत्ते की जंजीर को थोड़ा और ढीला किया जाना तय है। योगी आदित्यनाथ जैसे अपराधी को देश से सबसे बड़े सूबे का मुख्यमन्त्री बनाकर और कई राज्यों में संघ के स्वयं सेवकों को मुख्यमन्त्री पद सौंपकर संघ परिवार ने अपनी मंशा साफ़ ज़ाहिर कर दी है।

नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा की फ़ासीवादी सरकार ने देशी-विदेशी पूँजीपतियों की शह पर मज़दूर वर्ग के अधिकारों की डाकेजनी के लिए बीते साल एक अहम विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया। मज़दूरी संहिता विधेयक (कोड ऑफ़ वेजेज बिल) 2017 नामक इस विधेयक में मज़दूरों की मज़दूरी कम करने, ओवरटाइम की व्यवस्था ख़त्म करने, मालिकों को बोनस से छुटकारा दिलाने, ट्रेड यूनियन की कार्यवाइयों पर रोक लगाने, फ़ैक्टोरियों के निरीक्षण में ढील देने और न्यूनतम मज़दूरी न देने पर मालिकों के खिलाफ़ कार्यवाइ पर रोक लगाने सहित ढेरों मज़दूर-विरोधी प्रावधान हैं जिन्हें श्रम-सुधारों के नाम पर प्रस्तावित किया गया है। खुद को मज़दूर नम्बर वन कहने वाले नरेन्द्र मोदी के पूँजीपरस्त और घोर मज़दूर-विरोधी चरित्र का यह नमूना मात्र है। आने वाले दिनों में मज़दूरों के रहे-सहे हक़ों-हकूक को छीनने की भी पूरी तैयारी चल रही है।

अल्पसंख्यकों, मज़दूरों, छोटे-मझौले किसानों के हितों पर हमलों के साथ ही गुजरे साल महिलाओं, दलितों और आदिवासियों पर होने वाली वहशियाना हिंसा का सिलसिला बदस्तूर जारी रहा। इसके अतिरिक्त मुनाफ़े की बेलगाम हवस में पूँजीवादी तन्त्र ने समाज की रागों के साथ ही साथ आबोहवा में भी ज़हर घोलने का काम तेज़ रफ़्तार से आगे बढ़ाया जिसका नतीजा पिछले साल जाड़े की शुरुआत में अभूतपूर्व सघनता वाले 'स्मॉग' के रूप में सामने आया। फ़ासीवाद के दमघोंटू माहौल में इस देश में हर संवेदनशील और न्यायशील इंसान का जीना पहले ही दूभर हो गया था; जाड़े

के मौसम में राजधानी व आस-पास के इलाकों में रहने वाली आम मेहनतकश आबादी का साँस लेना भी दूभर होता जा रहा है।

अन्तरराष्ट्रीय पटल पर बीते साल के मुख्य घटनाक्रम

अन्तरराष्ट्रीय पटल पर पिछले साल साम्राज्यवाद के अन्तरविरोधों के तीखे होने के लक्षण साफ़ दिखायी दिये। ट्रम्प की अगुवाई में अमेरिकी साम्राज्यवाद ने बौराये हाथी की तरह दुनिया के विभिन्न हिस्सों में अपनी आक्रामकता दिखाने की कोशिश की। अमेरिका की बौखलाहट भरी आक्रामकता अफ़गानिस्तान में 'मदर ऑफ़ ऑल बॉम्ब्स' गिराने से लेकर उत्तर कोरिया पर हमले की धमकी व ईरान के खिलाफ़ बयानबाजी में साफ़ नज़र आयी। हालाँकि विश्व पटल पर रूस और चीन की साम्राज्यवादी धुरी के उभार से उपजी अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा में अमेरिकी साम्राज्यवाद के समीकरण बिगड़ते नज़र आये जिसकी वजह से उसकी बौखलाहट भी बढ़ती गयी। सीरिया में रूस के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप की बदौलत बशर अल-असद की सरकार पिछले साल स्थिर होती नज़र आयी। यही नहीं, समूचे मध्यपूर्व में इरान-सीरिया-हिजबुल्ला की धुरी का पलड़ा अमेरिका के अरब सहयोगियों की अपेक्षा भारी नज़र आया। इसकी एक बानगी लेबनान के प्रधानमन्त्री साद अल-हरीरी के इस्तीफ़े के रूप में देखने में आयी जिसने सऊदी अरब की यात्रा के दौरान ही अपना इस्तीफ़ा देते हुए कहा कि हिजबुल्ला ने लेबनॉन में राज्य के भीतर एक और राज्य बना लिया है और ईरान उसके देश में अव्यवस्था और विनाश फैला रहा है। उधर इराक़ में भी ईरान का दबदबा बढ़ता जा रहा है जो अमेरिका और अरब के हुक़मरानों की चिन्ता का सबब है। इन हालातों में सऊदी अरब के हुक़मरानों की इज़रायल से करीबी भी बढ़ती जा रही है जिससे अरब देशों की जनता का अपने हुक़मरानों के खिलाफ़ आक्रोश बढ़ता दिख़ा। मध्य-पूर्व में अमेरिकी साम्राज्यवाद के समीकरण बिगड़ते देख ट्रम्प ने साल के अन्त में यरूशलम को इज़रायल की राजधानी के रूप में मान्यता देकर एक बड़ा दाँव खेला; हालाँकि इस मामले में संयुक्त राष्ट्र में अमेरिकी साम्राज्यवादी पूरी तरह से अलग-थलग पड़ गये। गुजरे साल के अन्तिम दिनों में ईरान में भी बेहिजाब महँगाई और मुल्लाओं की सत्ता के खिलाफ़ एक जनउभार देखने में आया जिससे यह स्पष्ट है कि भविष्य में मध्यपूर्व के समूचे इलाक़े की अस्थिरता और बढ़ने वाली है जो उस क्षेत्र में बड़े बदलावों की पूर्वपीठिका तैयार करेगी।

पिछले साल जहाँ एक ओर ट्रम्प ने संरक्षणवादी नीतियों की दिशा में क्रदम उठाये वहीं चीन ने विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था की अगली क्रतार में शामिल होने की अपनी महत्वाकांक्षा जगज़ाहिर की। मई के महीने में चीन की राजधानी बीजिंग में सम्पन्न 'वन बेल्ट वन रोड' शिखर सम्मेलन में चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने विश्व के मुक्त व्यापार में चीन

की नैतिक और व्यावहारिक नेतृत्वकारी क्षमता का दावा किया। उससे पहले जनवरी में डावोस में वर्ल्ड इकोनॉमिक फ़ोरम की बैठक में भी जिनपिंग ने भूमण्डलीकरण के दौर में चीन द्वारा विश्व पूँजीवाद की रहनुमाई करने का दावा ठोका था। साल के अन्त में दिये गये अपने भाषण में भी जिनपिंग ने यह दावा किया कि भविष्य में सभी अन्तरराष्ट्रीय मुद्दों पर चीन की बात का वज़न होगा और यह कि चीन 'बेल्ट और रोड' पहल को तेज़ी से आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है। गौरतलब है कि 'वन बेल्ट वन रोड' परियोजना के तहत चीन समूचे मध्य एशिया से होते हुए यूरोप तक सड़क, रेलमार्ग, तेल और प्राकृतिक गैस पाइपलाइनों का तानाबाना खड़ा करने और एशिया व प्रशान्त के क्षेत्र में शिपिंग लेन का समुद्र आधारित नेटवर्क और बन्दरगाह के विकास की महत्वाकांक्षा रखता है जिसका विस्तार दक्षिण व दक्षिण-पूर्व एशिया से होते हुए पूर्वी अफ़्रीका और उत्तरी भूमध्य सागर तक होगा। पिछले कुछ दशकों में चीन में हुए तीव्र पूँजीवादी विकास, पूँजी के निर्यात और सैन्य शक्ति में हुए विस्तार को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि चीन न सिर्फ़ साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा रखता है बल्कि वो तेज़ी से वो क्षमता भी अर्जित करता जा रहा है। आज चीन और रूस अकेले दम पर भले ही अमेरिका को टक्कर दे पायें, परन्तु चीन और रूस का गठबन्धन निश्चय ही साम्राज्यवाद की एक नयी धुरी बनकर उभरा है जिसकी वजह से आने वाले दिनों में अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा और तीखे रूप में सामने आयेगी।

कैसे लाँचा जा सकता है चुनौतियों का पहाड़?

वैसे तो विश्व पूँजीवाद के संकट के दौर में दुनिया के विभिन्न हिस्सों में धुर दक्षिणपन्थी ताक़तों का उभार हो रहा है, लेकिन भारत में जो दक्षिणपन्थी उभार देखने में आ रहा है उसे सच्चे अर्थों में फ़ासीवादी उभार कहा जा सकता है क्योंकि इसका नेतृत्व हिन्दुत्व की फ़ासीवादी विचारधारा से लैस एक कॉडर आधारित संगठन कर रहा है और इसके पीछे व्यापक सामाजिक आधार वाला एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन है। ऐसे में जो वामपन्थी और प्रगतिशील भद्रजन अभी भी केवल चुनावी जोड़-जुगाड़ के सहारे फ़ासीवाद को परास्त करने के दिवास्वप्न देख रहे हैं वे विभ्रम का कुहरा और घना करने का काम कर रहे हैं। इतिहास गवाह है कि फ़ासीवाद को फ़ैसलाकुन शिकस्त उसके सबसे बड़े शत्रु यानी मज़दूर वर्ग की संगठित ताक़त ही दे सकती है। और ये फ़ैसलाकुन शिकस्त संसद के चण्डूखाने में नहीं बल्कि सड़कों पर आरपार की लड़ाई के ज़रिये ही दी जा सकती है। दंगाइयों और उपद्रवियों के फ़ासिस्ट गिरोह को मानवतावादी राग अलाप कर या तार्किक दलीलों के ज़रिये नहीं समझाया जा सकता है। ज़ाहिर है कि कॉडर आधारित फ़ासिस्ट संगठन को निर्णायक शिकस्त देने के

लिए एक कॉडर आधारित क्रान्तिकारी संगठन का ढाँचा खड़ा करना बेहद ज़रूरी है। यानी पूँजीवादी ढाँचे को नेस्तनाबूद करने के अपने ऐतिहासिक मिशन को पूरा करने की प्रक्रिया में मज़दूर वर्ग को न सिर्फ़ राज्य की ताक़त से लोहा लेना पड़ेगा बल्कि समाज में मौजूद फ़ासिस्ट गुण्डावाहिनियों का भी सड़कों पर सामना करने की तैयारी करनी होगी। ऐसा तभी किया जा सकता है जब मज़दूर बस्तियों, निम्न मध्यवर्गीय इलाकों और ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न क्रिस्म की सांस्कृतिक और राजनीतिक संस्थाओं तथा लोगों की जिन्दगी को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर जनान्दोलनों के ज़रिये क्रान्तिकारी विचारों की पैठ बनायी जाये। ज़ाहिर है कि यह बेहद जोखिम भरा, चुनौतीपूर्ण और लम्बा काम है। लेकिन इस चुनौती को स्वीकार करने की बजाय कोई शॉर्टकट ढूँढ़ने की कोई भी क़वायद जाने-अनजाने फ़ासीवाद के आधार को मज़बूत ही करेगी, क्योंकि क्रान्तिकारी हस्तक्षेप की गैरमौजूदगी में पूँजीवाद के लाइलाज ढाँचागत संकट से जनित सामाजिक असुरक्षा का लाभ संगठित फ़ासीवादी ताक़त को ही मिलेगा।

इसलिए चुनौतियों के इस विशालकाय पर्वत को लाँधने का संकल्प बाँधने के अलावा अब और कोई रास्ता नहीं बचा है। इस दूरगामी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए तात्कालिक तौर पर क्रान्तिकारी ताक़तों को अर्थवाद और दुस्साहसवाद के भटकावों से निजात पाकर एक फ़ासीवाद-विरोधी जुझारू मुहिम छेड़ने के लिए एकजुट होना आज की ज़रूरत है। हालाँकि इसकी सम्भावना कम है, लेकिन अगर संशोधनवादी वाम ताक़तें ऐसी जुझारू मुहिम में शामिल होने के लिए तैयार हों तो उनके साथ मोर्चा भी बनाया जा सकता है। बुर्जुआ वर्ग के चन्द रैडिकल बुद्धिजीवी भले ही ऐसे किसी मोर्चे में शामिल हो सकते हैं, लेकिन फ़ासीवाद-विरोधी इस मुहिम में बुर्जुआ वर्ग की किसी पार्टी या संगठन की कोई भूमिका नहीं दिखती। मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी राजनीतिक केन्द्र के संगठित होने की सूत्र में रणकौशल के रूप में बुर्जुआ चुनावों में भी फ़ासीवादियों से लोहा लिया जा सकता है, लेकिन उस परिस्थिति में भी इस गफ़लत में नहीं रहना होगा कि केवल चुनावों में भाजपा को हराकर फ़ासीवाद को निर्णायक शिकस्त दी जा सकती है। फ़ासीवाद के खिलाफ़ लड़ाई का मुख्य मोर्चा सड़कों पर ही बँधेगा। उसके लिए आज से ही फ़ासीवादियों की घिनीनी करतूतों, उनके काले इतिहास और उनके पूँजीपरस्त, धनलोलुप और लम्पट चरित्र का व्यापक पैमाने पर पर्दाफ़ाश करने की जुझारू मुहिम पुरजोर ढंग से छेड़नी होगी। परिवर्तनकामी ताक़तों के लिए नये साल के मौक़े पर इससे बेहतर संकल्प और कुछ नहीं हो सकता कि हम फ़ासीवादियों के सामाजिक आधार को छिन्न-भिन्न करने में अपनी पूरी ताक़त झोंक दें।

यमन संकट और अन्तरराष्ट्रीय मीडिया की साज़िश चूपी

मानव

पिछले कुछ सालों से अरब के कई मुल्कों में चल रही उथलपुथल की खबरों को हम लगातार देख-सुन रहे हैं। इस सदी के शुरू में इराक़, अफ़ग़ानिस्तान से शुरू होकर अमेरिकी नेतृत्व वाले साम्राज्यवादी दखल ने धीरे-धीरे मिस्र, लीबिया को तबाह किया और अब कुछ सालों से सीरिया को भी रौंदा है। पिछले कुछ समय से मीडिया की भी सीरिया की घटनाओं को लेकर लगातार रुचि रही है जहाँ पर कि दो साम्राज्यवादी ताक़तों, अमेरिका और रूस, के बीच के अन्तरविरोधों की गाँठ भयानक रूप में निर्दोष लोगों के ऊपर जा खुली है। साम्राज्यवादी, खासकर अमेरिका, के दखल ने ना सिर्फ़ सीरिया की पूरी आर्थिकता को बर्बाद कर दिया है, बल्कि इसकी पूरी सामाजिक बनावट को ही उधेड़कर रख दिया है जिसके दुष्प्रभाव आने वाले कई दशकों तक नज़र आते रहेंगे। परन्तु तक्ररीबन पिछले 2-3 सालों से ही अरब जगत के एक देश यमन में भी इसी अनुपात का ही एक और साम्राज्यवादी दखल चल रहा है जिसको लेकर तक्ररीबन पूरे मीडिया ने या तो साज़िशाना चूपी धारण कर रखी है और या फिर बेहद एकतरफ़ा तरीक़े के साथ अब तक रिपोर्टिंग की है। मार्च 2015 से अमेरिकी सहायता प्राप्त देश सउदी अरब ने अपने नेतृत्व में अरब जगत के दूसरे देशों को मिलाकर यमन पर हमला शुरू किया था जो कि आज पूरे यमन के अस्तित्व पर ही संकट बन चुका है। साम्राज्यवादियों की ओर से इसानी ज़िन्दगियों की इस क्रूर तबाही के सामने पिछले समय की सब बर्बरताएँ भी फीकी पड़ रही हैं।

यमन में मौजूदा उथलपुथल की तार तो अरब बहार के समय से ही जोड़ी जा सकती है जब यमन में भी ट्यूनिशिया, मिस्र की तरह ही लोग तत्कालीन राष्ट्रपति अली अब्दुल्लाह सालेह के खिलाफ़ उठ खड़े हुए थे। यमन अरब के सबसे ग़रीब देशों में से है जहाँ तक्ररीबन 40% आबादी ग़रीबी में रहती है। और इसी ग़रीबी, बेरोज़गारी जैसे मुद्दों को लेकर जनता का गुस्सा लगातार सालेह के खिलाफ़ बढ़ रहा था जिसने यमन पर 33 सालों तक (पहले यमन अरब गणतन्त्र के राष्ट्रपति के तौर पर और 1990 में दक्षिणी यमन के साथ एकीकृत होने के बाद पूरे यमन में) बतौर राष्ट्रपति हुकूमत की। इस कार्यकाल में उसने अपने और अपने नज़दीकियों की दौलत में बेहद विस्तार किया। उसकी अब हुई मौत के बाद उस के द्वारा पीछे छोड़ी गयी कुल दौलत खरबों में बतायी जाती है। उसकी इन ही भ्रष्ट और ज़ालिमाना नीतियों के खिलाफ़ ही जब लोग उठ खड़े हुए तो उसे 2012 के शुरू में गद्दी छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। उसके बाद उसने सउदी अरब के नेतृत्व में एक समझौते पर दस्तख़त किये जिसके अन्तर्गत सत्ता उसकी सरकार के ही डिप्टी अबदर-अबूह मन्सूर हादी को सँभाल दी गयी। फ़रवरी 2012 में ही

सालेह देश में फिर वापिस आ गया और तत्कालीन यमनी सरकार ने उस पर किसी भी क़ानूनी कार्यवाही से उसकी रक्षा की और उसका लड़का जनरल अहमद अली अब्दुल्लाह सालेह भी यमन की फ़ौज में अपना अहम रसूख रखता रहा। इस सबसे साफ़ था कि सउदी अरब की देख-रेख में यमन में सिर्फ़ चेहरों का ही तबादला हुआ है, बुनियादी तब्दीली कोई नहीं आयी।

इस सरकार के खिलाफ़ भी कुछ समय बाद ही हूती क़बायली लोगों ने संघर्ष छेड़ दिया। हूती क़बायली लोग शिया इस्लाम की ही एक शाखा ज़ाइदिया से सम्बन्ध रखते हैं जो कि सुन्नी इस्लाम के ही ज़्यादा करीब है। ग़ौरतलब है कि मीडिया के कई अदारे मौजूदा संकट को सुन्नी बनाम शिया का मसला बनाकर पेश कर रहे हैं जिससे आम लोगों में वही ग़लत पूर्व धारणा फैलायी जा सके कि मुसलमान बुनियादी तौर पर ही हिंसात्मक हैं। हालाँकि सच्चाई यह है कि यमन में सुन्नी और शिया लोग एक ही मस्जिद में नमाज़ पढ़ते रहे हैं और इनके बीच विवाह सम्बन्ध भी आम बात है। मीडिया की तरफ़ से ऐसा करने के पीछे दूसरा कारण यह है कि इस तरह मसले को पेश करके वह नाजायज़ ही यमन के मौजूदा संकट के लिए शिया बाहुल्य ईरान को ज़िम्मेदार ठहरा सकते हैं ताकि इस संकट के लिए मुख्य तौर पर ज़िम्मेदार अमेरिकी सहायता वाले सउदी गँठजोड़ को बरी किया जा सके। हालाँकि सच्चाई यह है कि यमन में ईरानी दखल एक बेहद सीमित हद तक ही है, और मौजूदा हालत में सीमित



ही हो सकता है क्योंकि सउदी अरब वाले गँठजोड़ ने यमन के साथ हवाई मार्गों के साथ-साथ समुद्री मार्गों पर भी बन्दिशें लगा रखी हैं। खुद अमेरिकी सरकार के पैसों पर चलने वाले एक नामी अमेरिकी विशेषज्ञ दल, कारनेगी मध्य-पूर्व केन्द्र, ने अपनी एक प्रकाशित रिपोर्ट में भी यही माना है। यह पश्चिमी मीडिया की पक्षपाती पत्रकारिता का ही एक नमूना है।

सो, हूती क़बायलियों के इस गुट ने अबदर-अबूह मन्सूर हादी के खिलाफ़ अपने संघर्ष के लिए अली अब्दुल्लाह सालेह के साथ मौक़ापरस्त गँठजोड़ भी किया। चूँकि सालेह की यमन की सेना पर पकड़ थी, इस सहयोग के बदौलत हूती विद्रोही बहुत जल्द ही यमन की राजधानी सना पर काबिज़ हो गये और मार्च 2015 में हादी सउदी अरब के पास शरण के लिए भाग गया। सउदी अरब ने अपने क़रीबी हादी को इस

तरह गद्दी से उतारे जाने को अपने हितों के लिए ख़तरा समझते हुए तुरन्त यमन पर कार्यवाही शुरू की और यह यमन की स्थिति में एक भारी मोड़ था। मार्च 2015 से लेकर अब तक सउदी अरब के नेतृत्व वाले इस गँठजोड़ (जिसमें मिस्र, मोराको, जॉर्डन, सूडान, संयुक्त अरब अमीरात, कुवैत, क़तर, बहरेन शामिल हैं) ने पूरे यमन पर जो क़हर बरपा किया है उसकी मिसाल पिछले समय में ढूँढ़नी मुश्किल है। सउदी नेतृत्व वाले इस गँठजोड़ ने हवाई और समुद्री रास्तों पर बन्दिशों और चौकसी बढ़ाकर यमन को बाक़ी देशों से काट दिया है जिसके चलते यमन को पहुँचने वाली बुनियादी ज़रूरतों की रसद में भारी कमी आ गयी है। इसके साथ ही इसने यमन के अहम अवसरचक्रात्मक ढाँचे - राजमार्गों, बन्दरगाहों, आदि पर भी बमबारी करके नुक़सान पहुँचाया है जिसके चलते रसद की दुलाई का कार्य चौपट होकर रह गया है। ग़ौरतलब है कि यमन अपनी बुनियादी ज़रूरतों का 90% बाहर से आयात करता है, इसीलिए इन पाबन्धियों और तबाही ने यमनी लोगों के जीवन के लिए ही ख़तरा पैदा कर दिया है। इसके अलावा इस गँठजोड़ ने यमन के स्कूलों, अस्पतालों, सार्वजनिक स्थलों जैसे कि बाज़ार, अन्तिम-संस्कार के अवसरों और अन्य सार्वजनिक इमारतों पर लगातार हवाई बमबारी के जरिये हज़ारों आम बेगुनाह लोगों को मार डाला है। इस बमबारी के लिए ऐसे गुच्छा बमों (क्लस्टर बमों) का इस्तेमाल किया गया है जो फटते ही हज़ारों टुकड़ों में विभाजित हो जाते हैं और फिर प्रत्येक टुकड़ा इस पूरी

लड़ी का हिस्सा बनकर क़हर ढाहता है। ऐसे हथियारों पर दुनिया के 100 से ज़्यादा देशों ने पाबन्दी लगायी हुई है परन्तु सउदी अरब इन हथियारों को खुलेआम इस्तेमाल कर रहा है। अकेले हवाई हमलों में ही अब तक 12,000 यमनी नागरिक मारे जा चुके हैं जबकि यमन पर लगायी गयी बन्दिशों के चलते 10,000 और मौतें हो चुकी हैं। इन बन्दिशों ने यमन के लिए अस्तित्व का ही संकट खड़ा कर दिया है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के मुताबिक़ इस समय 90% यमनी नागरिकों को किसी-न-किसी क्रिस्म की गम्भीर सहायता की दरकार है, जबकि 75% आबादी के पास अनाज की कमी है। इस समय 1.7 करोड़ लोगों के पास अनाज की कमी है जबकि 70 लाख और गम्भीर भुखमरी की हालत में पहुँच चुके हैं (यमन की कुल आबादी 2.70 करोड़ है)। अत्यधिक भुखमरी की हालत से

जूझती यह करोड़ों की आबादी ज़िन्दगी और मौत के बीच एक बारीक़ डोर पर ही टिकी हुई है और यदि राहत जल्दी नहीं पहुँचती तो इनकी ज़िन्दगी को ही ख़तरा बताया जा रहा है। यमन के 333 में से 49 ज़िले तो ऐसे हैं जहाँ अस्पताल की तो बात दूर है, एक भी डॉक्टर तक मौजूद नहीं है। कुल 30 लाख लोग घरों से उजड़ चुके हैं। पानी की किल्लत की हालत यह है कि आने वाले सात बरसों में यमन में पीने वाले साफ़ पानी की मुकम्मल किल्लत होने का अनुमान किया जा रहा है। इस समय गन्दे पानी पर निर्भर रहने की मजबूरी के चलते यमन के 23 में से 22 राज्यों में हैजे की बीमारी फैल चुकी है और साल 2017 में ही 5 लाख से अधिक हैजे के नये मामले सामने आये हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने हैजे के इस विस्फोट की "विश्व के सबसे गम्भीर विस्फोट के तौर पर निशानदेही की है।"

सीधे ही यह सवाल तो बनता ही है कि ऐसी बरबादी के बावजूद भी ज़्यादातर पश्चिमी मीडिया चूप क्यों है? पश्चिमी सरकारें अभी तक चूप क्यों हैं? इसका स्पष्ट सा कारण है कि इस पूरे मामले में अमेरिका का भीतर तक शामिल होना। सउदी अरब जो हवाई हथियार और बम यमन पर इस समय इस्तेमाल कर रहा है वह सब अमेरिका ने ही उसे मुहैया करवाये हैं। ओबामा प्रशासन के समय में भी अमेरिका ने सउदी अरब को 15 अरब डॉलर के हथियार बेचे थे और साल 2014 में ही खाड़ी के इन छोटे-छोटे देशों को कुल 33 अरब डॉलर के हथियार बेचे थे। हथियारों के ये सौदे ट्रम्प के समय

में भी न सिर्फ़ जारी हैं बल्कि और बड़े हुए हैं। इस साल की मई में ही ट्रम्प ने सउदी अरब का दौरा किया था जिसमें ऐसे ही कई और समझौते स्याहीबन्द हुए थे। ऐसे ही एक समझौते में यह भी शामिल था कि आने वाले 10 बरसों के दौरान अमेरिका सउदी अरब को 350 अरब डॉलर के हथियार मुहैया करायेगा। अमेरिका की सउदी अरब को हिमायत सिर्फ़ हथियारों के रूप में ही नहीं बल्कि सउदी अरब में जिस केन्द्र से यह हवाई हथियार यमन पर दागे जा रहे हैं उस केन्द्र में दर्जनों ही अमेरिकी सेना के अफ़सर भी सउदी सेना के साथ मिलकर काम कर रहे हैं।

यमन में अमेरिकी सहायता के साथ हो रही यह दखलअन्दाज़ी वास्तव में अमेरिकी साम्राज्य का मध्य-पूर्व में खोला गया एक नया मुहाज़ है जिस के तहत अमेरिका और सउदी अरब चाह रहे हैं कि उनका ही कोई क़रीबी

व्यक्ति यमन में गद्दी सँभाले। यमन सामरिक और व्यापारिक तौर पर एक अहम जगह पर क़ायम है। यमन की बाब-अल-मन्दब पणजोड़ मिस्र की सुएज़ नदी की ही तरह एक अहम मार्ग है जो कि भारतीय महासागर को भू-मध्य सागर के साथ जोड़ता है। फ़ारस की खाड़ी में से निकलने वाला तेल इसी मार्ग से होकर अफ़्रीका की तरफ़ और फिर वहाँ से यूरोप और अमेरिका की तरफ़ जाता है। एक रिपोर्ट के मुताबिक़ साल 2006 में ही संसार के कुल 4.3 करोड़ बैरल तेल सप्लाई में से अकेले इस रास्ते से 33 लाख बैरल तेल (एक बैरल तक्ररीबन 159 लीटर के बराबर होता है) रोजाना की पूर्ति होती थी। वाशिंगटन में बसे एक अमेरिकी विदेश नीति के माहिर एन्थनी कौरडसमैन के मुताबिक़ इस मसले में अमेरिका के दाव पर लगे हितों में, "सुएज़ नदी के रास्ते गुज़रने वाले हर जहाज़ी माल का ख़र्चा और सुरक्षा, इस नदी में चलती-फिरती अमेरिका और सहयोगी देशों की जंगजू बेड़ियाँ, मिस्र की आर्थिक स्थिरता, और सउदी अरब की जद्दाह में मौजूद अहम बन्दरगाह की सुरक्षा और खाड़ी से बाहर तेल निर्यात करने की एक अहम जगह की सुरक्षा शामिल हैं।" कहने का तात्पर्य है कि यह साम्राज्यवादी युद्ध भू-राजनीतिक पक्ष से और वैश्विक प्रभुत्व के पक्ष से अहम है।

निकट भविष्य में यमन के इस संकट का कोई हल होता नज़र नहीं आ रहा। अमेरिका ने यमन संकट के हल के लिए "बातचीत" का दिखावा करने की कोशिश करते हुए यह माँग रखी है कि पहले हूती विद्रोही अपने सभी हथियार उनको सौंप दें, फिर ही अमेरिका बातचीत के लिए तैयार होगा। कोई भी यह समझ सकता है कि यह बातचीत को गम्भीरता के साथ चलाने के लिए दूसरे पक्ष को न्यौता देना नहीं है, बल्कि सीधा-सीधा यह कहना है दूसरा पक्ष पहले हमारे सामने समर्पण करे, फिर ही हम बातचीत करेंगे। ऐसी अमेरिकी धौंस भला कैसे बातचीत का रास्ता साफ़ कर सकती है? ज़ाहिर है अमेरिकी सहायता वाले इस सउदी गँठजोड़ ने पिछले तक्ररीबन 17 सालों से ही इराक़, अफ़ग़ानिस्तान, लीबिया, सीरिया और अब यमन को एक के बाद एक निशाना बनाया है। अमेरिका इस समय अपनी गिरती हुई आर्थिक ताक़त को अपनी सैन्य श्रेष्ठता के जरिये सन्तुलित करने की कोशिश कर रहा है और अपने वैश्विक प्रभुत्व के मंसूबों में बाधा बनती हर ताक़त को खत्म करने के मक़सद के साथ युद्धों को जनम दे रहा है। यह वैश्विक प्रभुत्व का नेतृत्व क़ायम रखने की एक वहशियाना लड़ाई है जिसको मज़दूर वर्ग के नेतृत्व वाली पूँजीवाद-विरोधी, साम्राज्यवाद-विरोधी नयी समाजवादी क्रान्तियाँ ही रोक सकती हैं।

●

नये साल का पहला ही दिन चढ़ा जातिगत तनाव की भेंट जाति-धर्म के नाम पर बँटने की बजाय हमें असली मुद्दे उठाने होंगे

सत्यनारायण

नये साल 2018 का पहला दिन ही इस बार जातिगत तनाव की भेंट चढ़ गया। महाराष्ट्र के भीमा कोरेगाँव में इकट्ठा हुए दलितों पर पत्थरबाजी की घटना व उसके बाद दो दिन महाराष्ट्र के अलग-अलग हिस्सों में प्रदर्शनों ने आम आबादी के बीच जातिगत दीवार को थोड़ा और ऊँचा कर दिया। ये जातिगत तनाव एक मायने में पिछले साल की ही निरन्तरता है। पिछले पूरे साल मराठा मूक मोर्चा व बहुजन मोर्चा निकलते रहे। हर मोर्चा जाति के नाम पर लोगों को एकजुट करता गया और लोगों के असली मुद्दे गायब हो गये। पिछले कुछ सालों में खेती के संकट, नोटबन्दी व लगातार जारी मन्दी ने बेरोज़गारी को अभूतपूर्व रूप से बढ़ाया है। लेकिन आम जनता को इन असली मुद्दों पर एकजुट होने से रोकने के लिए शासक वर्ग ने धर्म व जाति का बखूबी इस्तेमाल किया है व वो इसमें कामयाब भी हुए हैं। भीमा कोरेगाँव की ये हिंसा भी शासक वर्ग का एक ऐसा ही षड्यन्त्र थी।

भीमा कोरेगाँव में क्या हुआ था

भीमा कोरेगाँव की लड़ाई अंग्रेजों व पेशवा के बीच 1 जनवरी 1818 को हुई थी। हालाँकि पेशवा इससे पहले नवम्बर 1817 में पुणे में ही हार चुका था पर उसकी दुबारा इकट्ठा होकर हमला करने की कोशिश को यहाँ धक्का लगा था। महार महाराष्ट्र की एक दलित जाति है। अंग्रेजों की सेना में महार भी काफ़ी संख्या में थे। इसीलिए पेशवा की हार के जश्न के नाम पर दलितों की बड़ी आबादी यहाँ हर साल 1 जनवरी को इकट्ठा होती है। भीमा कोरेगाँव के युद्ध से दलितों को क्या मिला व क्या ये जश्न मनाने लायक है, इस विषय पर 1 जनवरी 2018 की हिंसा से पहले एक लेख हमने लिखा था जो अलग से दिया जा रहा है। (देखें पृष्ठ 12) संक्षेप में हमारा मत है कि अंग्रेजों ने हमेशा ही ब्राह्मणवाद से समझौता किया व जाति व्यवस्था को कानूनी जामा पहनाकर मज़बूती प्रदान की। अपनी भू-राजस्व व्यवस्था से व अन्य उपकरणों से दलितों की स्थिति को ओर भी रसातल में पहुँचाया। इसलिए भीमा कोरेगाँव युद्ध का जश्न ये कहकर मनाना कि इससे पेशवाई (ब्राह्मणवादी व्यवस्था) खत्म हुई, एक अस्मितावादी राजनीति के अलावा ओर कुछ नहीं है। लेकिन इसके बावजूद देश में किसी भी ऐतिहासिक घटना का स्मरण करने व उसके नाम पर इकट्ठा होने का अधिकार जनता के हरेक हिस्से के पास है व हम इस अधिकार की हिमायत करते हैं।

इस बार जब भीमा कोरेगाँव में लोग इकट्ठा हुए तो उससे काफ़ी पहले से ही आरएसएस से जुड़े दो संगठनों ने मराठा आबादी को दलितों के विरुद्ध भड़काना शुरू कर दिया था। ये दो संगठन थे, सम्भाजी भिडे के नेतृत्व वाला शिवप्रतिष्ठान व मिलिन्द एकबोटे

के नेतृत्व वाला समस्त हिन्दु आघाडी। इन्होंने मराठा आबादी के बीच प्रचार किया कि दलित पेशवा के ऊपर जीत का जश्न मनाते हैं और पेशवा की सेना में तो बड़ी संख्या में मराठा थे, इसलिए एक तरीके से दलित मराठों के ऊपर जीत का जश्न मनाते हैं। उनके इस प्रचार व साथ ही अन्य अफवाहों ने युवा आबादी को उन्मादित किया व 1 जनवरी के दिन पत्थरबाजी व आगजनी हुई। सम्भाजी भिडे सांगली ज़िले का वही व्यक्ति है जिसके बारे में नरेन्द्र मोदी ने कहा था कि सम्भाजी भिडे नरेन्द्र मोदी को आने के लिए निमन्त्रण नहीं बल्कि आदेश देते हैं। दोनों व्यक्तियों की संघ से क़रीबी ये बताने के लिए काफ़ी है कि इन पर अब कोई कार्रवाई नहीं होगी। उल्टा मीडिया के माध्यम से ये हवा बनायी जा रही है कि इस हिंसा के लिए 31 दिसम्बर को पुणे में हुई एल्गार परिषद के वक्ता जिम्मेदार हैं। असली अपराधियों को गिरफ़्तार ना कर निर्दोषों को फँसाना, उनके विरुद्ध कुत्साप्रचार ये संघ का पुराना हथकण्डा है। अब तो इनके पास पूरी राज्यसत्ता है, मीडिया है और लाखों ट्रोल्स की भीड़ है। एक तरफ़ ये भक्तजन फ़ोटोशॉप की हुई फ़ोटो दिखाकर इस घटना के पीछे कभी पाकिस्तान तो कभी नक्सलियों का हाथ बता रहे हैं और दूसरी तरफ़ फ़डनवीस सरकार असली अपराधी भिडे व एकबोटे को गिरफ़्तार नहीं कर रही है। इस घटना के बाद पूरे महाराष्ट्र में दो दिन तक बन्द का आयोजन किया गया व स्वतःस्फूर्त तरीके से दलित युवाओं की बड़ी आबादी सड़कों पर आयी व अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ़ गुस्से का इज़हार किया।

महाराष्ट्र में मराठा-दलित तनाव का असली कारण क्या है

जनता को आपस में लड़वाने के सिर्फ़ अफवाहें ही काफ़ी नहीं होती हैं, बल्कि उसकी आर्थिक ज़मीन होना भी ज़रूरी है। आज देश के अन्य राज्यों की तरह महाराष्ट्र भी आर्थिक संकट से गुज़र रहा है। बेरोज़गारी बेतहाशा है। मराठा आबादी के बीच से कुछ मुट्ठी-भर अमीरों को छोड़ दिया जाये तो बाकी मराठा आबादी के हालात बेहद ख़राब हैं। अगर महाराष्ट्र के भीतर, जनसंख्या के आधार पर देखा जाये तो आबादी का क़रीब एक-तिहाई हिस्सा और कुछ आँकड़ों के अनुसार 35-38 फ़ीसदी मराठा आबादी का है। 27 फ़ीसदी अन्य पिछड़ी जातियों जिसमें कुनबी, धनगर जातियाँ आदि हैं और 10-12 फ़ीसदी आबादी दलितों की है। मराठा आबादी में 200 कुलीन और अतिथनादय मराठा परिवार ऐसे हैं जिनका आज प्रदेश के लगभग सारे मुख्य आर्थिक संसाधनों और राजनीतिक सत्ता के केन्द्रों पर क़ब्ज़ा है। यह मराठा आबादी का सबसे कुलीन वर्ग है, जिसके पास अप्रत्याशित रूप से राजनीतिक और आर्थिक ताक़त का संकेन्द्रण है। प्रदेश के क़रीब 54

प्रतिशत शिक्षा संस्थानों पर इनका क़ब्ज़ा है, प्रदेश की 105 चीनी मीलों में से क़रीब 86 का मालिकाना इनके पास है, प्रदेश के क़रीब 23 सहकारी बैंकों के यही खाते-पीते मराठा प्रबन्धक हैं, प्रदेश के विश्वविद्यालयों में क़रीब 60-75 प्रतिशत प्रबन्धन इनके क़ब्ज़े में है। क़रीब 71 फ़ीसदी सहकारी समितियाँ इनके पास हैं। जहाँ तक राजनीतिक ताक़त की बात है तो 1962 से लेकर 2004 तक चुनकर आये 2430 विधायकों में 1336 (यानी 55 फ़ीसदी) मराठा हैं, जिनमें अधिकांश इन्हीं परिवारों से आते हैं। 1960 से लेकर अब तक महाराष्ट्र के 19 मुख्यमन्त्रियों में से 10 इनके बीच से ही हैं।

इनके ठीक नीचे है मराठा आबादी का दूसरा वर्ग – धनी किसान या ‘बागायती’ वर्ग जो नक़दी फ़सलें पैदा करता है और गाँवों का पूँजीपति वर्ग है। महाराष्ट्र में क़रीब 80-90 प्रतिशत कृषि-योग्य भूमि के हिस्से का मालिकाना मराठा जाति के पास है। इनमें से क़रीबी एक-तिहाई से ज़्यादा इसी धनी किसान वर्ग के पास है। यह वर्ग ऊपर के धनी घरानों जैसी आर्थिक शक्तिमत्ता तो नहीं रखता, लेकिन यह महाराष्ट्र की चुनावी राजनीति का एक प्रमुख राजनीतिक प्रेशर ग्रुप है, जिसका नीति-निर्धारण पर असर है। इनके नीचे आता है मँझोले किसानों का वर्ग जिनके पास 2.5 एकड़ से लेकर 10 एकड़ तक की ज़मीन है। यह न तो पूरी तरह खुशहाल है, न ही बर्बादी के क़गार पर खड़े हैं। ये अनिश्चितता में जीते हैं और अपनी खेती में काफ़ी हद तक मौसम-बारिश जैसे प्राकृतिक कारकों और सरकारी नीतियों पर निर्भर होते हैं। ये धनी किसानों की क़तार में शामिल होने के लगातार सपने सँजोते हैं, और जब ऐसा करने में आर्थिक तौर पर नाकामयाब होते हैं, तो हताशा और रोष का शिकार होते हैं। ये सूदखोरों और बैंकों द्वारा तंग किये जाने पर आत्महत्याएँ कर लेते हैं। मँझोले किसानों के इस वर्ग का अच्छा खासा हिस्सा पिछले दशकों में खेतिहर मज़दूरों की क़तार में भी शामिल हुआ है। इसके नीचे आने वाला चौथा वर्ग है ग़रीब मराठा आबादी का जो कि केवल खेती से जीविकोपार्जन नहीं कर पाते और उनका अच्छा-खासा हिस्सा बड़े किसानों के खेतों पर मज़दूरी भी करता है। इनकी स्थिति काफ़ी हद तक खेतिहर मज़दूरों जैसी होती है। ये अपने बच्चों को स्तरीय शिक्षा नहीं दिला सकते। डिग्री इत्यादि के अभाव में शहरों तक पहुँच रोज़गार प्राप्त कर सकने की इनकी स्थिति नहीं होती। इनमें सांस्कृतिक और शैक्षणिक पिछड़ापन बुरी तरह व्याप्त है। पाँचवाँ वर्ग सबसे ग़रीब मराठा आबादी का यानी खेतिहर मज़दूरों का है, जो दूसरे के खेतों पर मज़दूरी करने या सरकार की रोज़गार गारण्टी योजनाओं पर निर्भर रहने को बाध्य हैं। यह आबादी सबसे भयंकर ग़रीबी में जीवनयापन कर रही है। कुछ नमूना सर्वेक्षणों के अनुसार

कुल मराठा आबादी का क़रीब 35-40 हिस्सा खेतिहर मज़दूरों का है।

इसमें नीचे के विशेषकर तीन वर्गों का गुस्सा ग़रीबी, बेरोज़गारी और असमानता के खिलाफ़ लम्बे समय से संचित हो रहा है। इस गुस्से का निशाना मराठा जातियों की नुमाइन्दगी करने वाली प्रमुख पार्टियाँ बन सकती हैं, जो कि वास्तव में मराठों के बीच मौजूद अतिथनादय वर्गों की नुमाइन्दगी करता है। यह वर्ग अन्तरविरोध अपने आपको इस रूप में अभिव्यक्त करने की सम्भावना-सम्पन्नता रखता है। लेकिन यह सम्भावना-सम्पन्नता स्वतः एक यथार्थ में तब्दील हो, इसकी गुंजाइश कम है। ग़रीब मेहनतकश मराठा आबादी में भी जातिगत पूर्वाग्रह गहराई से जड़ जमाये हुए हैं। ब्राह्मणवादी वर्चस्ववाद की सोच उनमें भी अलग-अलग मात्रा में मौजूद है। ऐसे में, मराठों के बीच मौजूद जो शासक वर्ग है और उसकी नुमाइन्दगी करने वाली मराठा पहचान की राजनीति करने वाली बुर्जुआ पार्टियाँ मराठा जातियों के व्यापक मेहनतकश वर्ग के वर्गीय गुस्से को एक जातिगत स्वरूप दे सकती हैं और देती रही हैं। इन आबादी को इस बात पर भरमाया जा सकता है कि उसकी ग़रीबी और बेरोज़गारी का मूल कारण दलित हैं जो कि आरक्षण के ज़रिये रोज़गार के मौक़े हड़प जा रहे हैं। इसी के साथ दलित आबादी के बीच जो एक मध्यवर्ग पैदा हुआ है, वह भी अस्मितावादी राजनीति के प्रभाव में होने के चलते जातीय तौर पर अपने आपको एसर्ट कर रहा है, जिससे कि वर्गीय अन्तरविरोधों को जातिगत स्वरूप देने की सम्भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं।

अगर दलित आबादी की बात की जाये तो उसका बहुलांश खेतिहर या औद्योगिक मज़दूर है। शहरी दलित आबादी के बीच अन्य उच्च जातियों की तुलना में बेरोज़गारी दर दोगुनी है। कहने की ज़रूरत नहीं कि दलित मेहनतकशों को आर्थिक शोषण के साथ-साथ क्रम-क्रम पर बेइन्तहा जातीय अपमान और उत्पीड़न भी सहना पड़ता है। दूसरी तरफ़ यह भी सच है कि मध्य जातियों के साथ ही सवर्ण कही जाने वाली जातियों की भी एक अच्छी-खासी आबादी ग़रीब और मेहनतकशों की है। पूँजीवादी विकास के साथ इन जातियों में भी ऊपर की एक छोटी आबादी ज़्यादा से ज़्यादा अमीर और ताक़तवर होती जा रही है और ग़रीबों की तादाद बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि आज कई राज्यों में मध्य किसान जातियाँ आरक्षण की माँग को लेकर सड़कों पर हैं, चाहे वो गुजरात के पटेल हों, महाराष्ट्र के मराठा हों या फिर हरियाणा के जाटा। आज आरक्षण की लड़ाई एक ऐसा हथियार बन गया है जिसमें शासक वर्ग को खर्च कुछ नहीं करना पड़ता और जनता को बाँटने में काफ़ी सहायता मिलती है। मध्य किसान जातियों के बीच यह प्रचार किया जाता है कि दलित आबादी के आरक्षण के कारण आपको नौकरियाँ नहीं मिल

रही हैं। जबकि हकीकत कुछ और ही है। 1990 के दशक से जारी निजीकरण, उदारकरण की नीतियों के कारण आज ज़्यादातर नौकरियाँ अस्थायी हो चुकी हैं, सरकारी नौकरियों में लगातार भारी कटौती जारी है। हाल ही में महाराष्ट्र सरकार ने सरकारी कर्मचारियों की संख्या में 30 प्रतिशत की कटौती का ऐलान किया था। यानी कुल 17 लाख कर्मचारियों में से 5.1 लाख पद इस सरकार ने गायब करने का मन बना लिया है। ऐसा ही हाल केन्द्र सरकार का भी है। 29 मार्च 2017 को लोकसभा में कार्मिक मंत्री जितेन्द्र सिंह ने बताया था कि 2013 के मुकाबले 2015 में 89 प्रतिशत सरकारी भर्ती बन्द हो गयी है। 2013 में जहाँ 1,51,841 सीधी भर्तियाँ हुईं वहीं 2015 में मात्र 15,877। ऐसे हालात में आरक्षण अगर पूरी तरह हटा भी दिया जाये या फिर किसी जाति का आरक्षण एक-दो प्रतिशत बढ़ा दिया जाये तो भी समग्र बेरोज़गारी की तस्वीर वैसी ही रहेगी। आज आरक्षण हटवाने या नया आरक्षण लेने की लड़ाई लड़ने की बजाय रोज़गार गारण्टी की माँग के लिए एकजुट होना ही एकमात्र रास्ता है।

हर जाति के ग़रीबों को ये समझाने की ज़रूरत है कि उनकी बदतर हालत के असल जिम्मेदार दलित, मुस्लिम या आदिवासी नहीं बल्कि खुद उनकी ही व अन्य जातियों के अमीर हैं। जब तक मेहनतकश अवाम ये नहीं समझेगा तब तक होगा यही कि एक जाति अपना कोई आन्दोलन खड़ा करेगी व उसके विपरीत शासक वर्ग दूसरी जातियों का आन्दोलन खड़ा करके जनता के बीच खाइयों को और मज़बूत करेगा। इस साज़िश को समझने की ज़रूरत है। इस साज़िश का जवाब अस्मितावादी राजनीति और जातिगत गोलबन्दी नहीं है। इसका जवाब वर्ग संघर्ष और वर्गीय गोलबन्दी है। इस साज़िश को बेनकाब करना होगा और सभी जातियों के बेरोज़गार, ग़रीब और मेहनतकश तबकों को गोलबन्द और संगठित करना होगा। इसी प्रक्रिया में ब्राह्मणवाद और जातिवाद पर भी प्रहार करना होगा। वास्तव में, जाति उन्मूलन और ब्राह्मणवाद के नाश का रास्ता इसी प्रकार की वर्गीय गोलबन्दी के ज़रिये सम्भव है। अस्मिताओं (पहचानों) के टकराव में हर अस्मिता कठोर बनती जाती है और अन्ततः ग़ैर-मुद्दों पर आम मेहनतकश लोग ही कट मरते हैं। क्या दशकों से ऐसा ही नहीं होता आया है? क्या अब भी हम शासक वर्गों के इस जाल में फँसेंगे? क्या हम अब भी उनके हाथों मूर्ख बनते रहेंगे? नहीं! पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध एकजुट होना और इसके लिए और इसी प्रक्रिया में ब्राह्मणवाद, जातिवाद और साम्प्रदायिकता के विरुद्ध समझौताविहीन संघर्ष करना – मेहनतकश जनता के पास यही एकमात्र रास्ता है!

भीमा कोरेगाँव की लड़ाई के 200 साल का जश्न - हताश रिपब्लिकन पैन्थर्स की अस्मितावादी राजनीति की पराकाष्ठा!

जाति अन्त की परियोजना ऐसे अस्मितावाद से आगे नहीं बल्कि पीछे जायेगी!

सत्यनारायण

यह लेख 24 दिसम्बर को लिखा गया था जब भीमा कोरेगाँव की लड़ाई के 200 साल का जश्न मनाने की तैयारी चल रही थी। 1 जनवरी को हुई हिंसा पर अलग लेख के लिए देखें पृष्ठ 11

इतिहास की ऐसी लड़ाइयाँ जो उत्पीड़ित वर्गों ने अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ लड़ी होती हैं, मानवता की धरोहर होती हैं। भले ही ऐसी लड़ाइयों में संघर्षरत जन पराजित हो जाये पर फिर भी उनका ऐतिहासिक मूल्य रहता है। हम उन्हें याद करते हैं और उनसे प्रेरणा लेते हैं। पर अगर शासक वर्ग के दो खेमे आपस में लड़ रहे हों और उत्पीड़ित जनता का एक हिस्सा एक शासक की ओर से उसमें भागीदारी करे तो ऐसी लड़ाई से क्या प्रेरणा मिल सकती है? अगर ऐसी लड़ाई से उत्पीड़ित जनता कोई शर्त रखकर अपने लिए फ़ौरी राहत हासिल कर ले तब भी ये ऐतिहासिक प्रेरणा का कार्य तो कतई नहीं करती।

ऐसी ही एक लड़ाई भीमा कोरेगाँव की थी। आजकल महाराष्ट्र में रिपब्लिकन पैन्थर्स नाम का एक संगठन 'भीमा कोरेगाव शौर्यदिन प्रेरणा अभियान' बैनर तले इस लड़ाई के 200 वर्ष पूरे होने के अवसर पर एक बड़े आयोजन की योजना में लगा है। यह संगठन लाल और नीले का मिश्रण बनाने, यानी मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद के समन्वय करने का हिमायती है। बातों में जय भीम-लाल सलाम और कार्यों में अस्मितावादी राजनीति, अब बस इस संगठन की पहचान यही बन गयी है। भीमा कोरेगाँव की लड़ाई को पेशवाई के खात्मे के तौर पर पेश करने और वर्तमान फ़्रासीवादी सत्ता को नयी पेशवाई बोलकर ये कहते हैं कि भीमा कोरेगाँव को याद करने का मतलब है इस नयी पेशवाई को हराना। इन्होंने इस मौके पर इस आयोजन का औचित्य प्रतिपादन करते हुए एक पुस्तिका का भी प्रकाशन किया है। उस पुस्तिका में खुद इतने अन्तरविरोध हैं कि लेखक से पूछने का मन करता है कि जब आप सब जानते ही हैं तो क्यों आयोजन की तकलीफ़ उठा रहे हैं? इस पुस्तिका में ऐतिहासिक स्रोतों, तर्कों की बजाय कपोल कल्पनाओं का इस्तेमाल ज़्यादा किया गया है। जहाँ कहीं पुस्तिका के ही विश्लेषण को खारिज करने वाली कुछ सच्चाइयाँ खुद बयान करनी पड़ी हैं, वहाँ भी उनको ऐसे दायें-बायें कर दिया गया है कि मूल विश्लेषण की लाज बच जाये। इस पुस्तिका में मौजूद अन्तरविरोधों

का कपोल कल्पनाओं पर हम लेख के बीच यथास्थान टिप्पणी देंगे। साथ ही इस संगठन के दावों की पड़ताल हम ऐतिहासिक और वर्गीय नज़रिये से करने की कोशिश करेंगे और जानेंगे कि इस लड़ाई ने दलितों को क्या दिया।

अंग्रेज़ों ने एशिया के इस उपमहाद्वीपीय इलाके (उस वक़्त एक देश या "राष्ट्र" तो अस्तित्व में नहीं था पर फिर भी आगे इस लेख में हम इस इलाके के लिए औपनिवेशिक भारत नाम इस्तेमाल करेंगे) को जीतने के लिए हर जगह तमाम जोड़-तोड़-तिकड़म किये। हर जगह यहाँ के कुछ लोगों को अपने साथ लिया और अलग-अलग रियासतों को पराजित करने में उनका इस्तेमाल किया। भीमा कोरेगाँव की लड़ाई 1 जनवरी 1818 को हुई थी। इस वक़्त तक अंग्रेज़ काफ़ी बड़े भारतीय भूभाग पर क़ब्ज़ा कर चुके थे। सभी जानते हैं कि प्लासी और बक्सर के युद्धों के बाद भारतीय उपमहाद्वीप में अंग्रेज़ों का वर्चस्व एक वास्तविकता बन चुका था। अंग्रेज़ों की सामरिक ताक़त भी काफ़ी ज़्यादा थी। मराठा साम्राज्य इस वक़्त तक लगभग परास्त हो चुका था। पेशवा को पुणे से भगाया जा चुका था। पेशवा इधर-उधर दौड़ रहा था व बाद में वापस पुणे पर हमला करने की कोशिश में लग गया था। जब वो पुणे की तरफ़ बढ़ रहा था तो उसे रोकने के लिए शिरूर से सेना भेजी गयी थी। सेना में कुल 834 लोग थे जिसमें बॉम्बे नेटिव इन्फ़ैण्ट्री के 500 सैनिक थे। हालाँकि इसमें महार कितने थे इसका आँकड़ा तो नहीं मिला पर अन्य स्रोतों के अनुसार बॉम्बे आर्मी का छठा हिस्सा (यानी लगभग 17 प्रतिशत) महार सैनिकों का था। कोरेगाँव की लड़ाई के बाद जो स्मारक लगा उसमें लिखे 49 नामों में से 22 महारों के हैं। यानी ये तय है कि सभी 500 सैनिक महार नहीं थे।

महार सेना में क्यों भर्ती हुए, इसको लेकर भी इस संगठन द्वारा जारी पुस्तिका में कल्पना का ही ज़्यादा सहारा लिया गया है। इनके अनुसार महार सेना में इसलिए भर्ती हुए क्योंकि वो पेशवाओं से अपने अत्याचार और अपमान का बदला लेना चाहते थे। ये बात ऐतिहासिक तथ्यों और तर्कों से कहीं साबित नहीं होती। अंग्रेज़ों ने जब भर्ती की तो उन्होंने महारों के किसी प्रतिनिधि को बुलाकर ये नहीं कहा कि आपको हम पेशवा से लड़ने के लिए भर्ती कर रहे हैं। ये एक संयोग था कि बॉम्बे आर्मी उस समय वहाँ उपस्थित थी और पुणे से आर्मी आने में देर लगने के कारण शिरूर की बटालियन को भेजा गया। यह पूरी तरह सच है कि पेशवाई का शासन जातिगत अत्याचारों का शासन था पर पेशवा

का शासन अन्त होने के बाद भी परिस्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया। अगर अंग्रेज़ों व महारों का कोई घोषित या अघोषित करार इस सम्बन्ध में हुआ होता तो जाति अत्याचारों व भेदभावों पर अंग्रेज़ कुछ विशेष कार्य करते। यदि महारों की सेना में भर्ती से महार जाति को शिक्षा व अन्य लाभ मिले तो यह न तो महारों के सेना में शामिल होने के सचेतन निर्णय के कारण हुआ था और न ही अंग्रेज़ों द्वारा योजनाबद्ध ढंग से जातिगत उत्पीड़न ख़त्म करने के लिए हुआ था। अंग्रेज़ों ने देश के कई हिस्सों में उस समय जातिगत, जातीय (एथनिक), राष्ट्रीय समूहों की सेना में भर्ती की थी और बाद में उनकी रेजीमेण्टें भी बनायी थीं, जैसे कि सिख रेजीमेण्ट, गोरखा रेजीमेण्ट, नगा रेजीमेण्ट, राजपुताना रेजीमेण्ट आदि। इनमें से किसी भी रेजीमेण्ट को बनाने में न तो अंग्रेज़ों ने इन समुदायों के कल्याण को अपना लक्ष्य बनाया था और न ही इन समुदायों ने अपने उत्थान हेतु अंग्रेज़ सेना में शामिल होने का कोई सामूहिक निर्णय लिया था। महारों के सेना में शामिल होने पर भी यही बात लागू होती है। जैसाकि आनन्द तेलतुम्बडे ने लिखा है, अंग्रेज़ों के इस क्रम और ऐसे तमाम क्रमों से यदि दलितों को कहीं कुछ लाभ पहुँचा तो वह केवल अंग्रेज़ी शासन का उपोत्पाद (बाई प्रोडक्ट) था। बाद में बेशक इन फ़ायदों के कारण महार जाति के तमाम सुधारकों ने सेना में भर्ती को प्रोत्साहन दिया और साथ ही ब्राह्मणों के विरोध के कारण अंग्रेज़ों द्वारा सेना में महारों की भर्ती बन्द किये जाने पर अंग्रेज़ों को भर्ती पुनः प्रारम्भ करने के लिए आवेदन किये। ख़ैर, मूल चर्चा पर वापस लौटते हैं।

जब पेशवा को ये खबर मिली कि ब्रिटिश आर्मी भीमा नदी के किनारे है तो उसने अपने 2000 सैनिक लड़ने के लिए भेजे। गौरतलब है कि उसके पास कुल 28000 सैनिक थे। व कुछ अम्बेडकरवादी इतिहासकार दावा करते हैं कि पेशवा ने सभी सैनिकों को लड़ने के लिए भेजा था। यह बात तथ्यतः सही नहीं है। इस संगठन ने भी अपने द्वारा जारी पुस्तिका में सभी 28000 सैनिकों को 834 से लड़वा दिया है। इस सम्बन्ध में एक नाटकीय व काल्पनिक प्रसंग भी इन्होंने अपनी पुस्तिका में पेश किया है। इन्होंने लिखा है कि जब कैप्टन स्ट्रॉण्टन, जो कि अंग्रेज़ी सैन्य टुकड़ी का नेतृत्व कर रहा था, ने पेशवा की सेना का मुकाबला करने की शुरुआत की, तो पहले-पहल वो 28000 की सेना देखकर घबरा गया पर अपनी बटालियन में महार सैनिकों का ज़िगर देखकर उसने लड़ने का निश्चय किया। सच यह है कि उस

वक़्त स्ट्रॉण्टन के पास कोई विकल्प नहीं था और उसे अपनी छोटी-सी टुकड़ी के दम पर ही पुणे से सेना आने तक पेशवा को रोकना था। रोकने में भी उसकी ज़्यादा मदद उसके हथियारों ने की। यह बात दीगर है कि महार सैनिकों ने भी इस लड़ाई में पेशवाई के प्रति अपनी नफ़रत और असन्तोष के चलते जुझारू ढंग से भागीदारी की होगी। लेकिन जिस रूप में रिपब्लिकन पैन्थर्स ने पुस्तिका में पूरे वाक़ये को पेश किया है, वह अस्मिता निर्माण की परियोजना का हिस्सा ज़्यादा लगता है और ऐतिहासिक विवरण कम।

पेशवा की सेना का बड़ा हिस्सा अरबी था व मराठा, गोसाईं भी काफ़ी संख्या में थे। 1 जनवरी को दोपहर में पेशवा व अंग्रेज़ों की सेना के बीच लड़ाई शुरू हुई। शुरू में पेशवा की सेना भारी पड़ी व अरबों ने नदी की रक्षा में लगी एकमात्र अंग्रेज़ी गन को क़ब्ज़े में ले लिया व 11 अंग्रेज़ गनर्स को मार गिराया (उस वक़्त तक इस महत्वपूर्ण पोस्ट पर अंग्रेज़ ही होते थे)। कुछ अंग्रेज़ी गनर इस मौके पर आत्मसमर्पण की सलाह भी दे रहे थे पर कैप्टन स्ट्रॉण्टन ने ये बात नहीं मानी। इसके बाद लड़ाई दोबारा शुरू हुई व रात नौ बजे पेशवा की सेना ने फ़ायरिंग रोक दी। पीछे से और अंग्रेज़ सैनिक आने की आशंका में वो चले गये। हालाँकि वो तुरन्त उस इलाके से भागे नहीं व दूसरे दिन भी अपना डेरा कोरेगाँव में डाल रखा था। अंग्रेज़ों के लगभग 275 सैनिक इस लड़ाई में मारे गये थे व पेशवा के 500-600। इसके बाद जनरल स्मिथ ने पेशवा का पीछा किया। रास्ते में आने वाले पेशवा के ज़्यादातर मराठा जागीरदार अंग्रेज़ों के सामने समर्पण कर चुके थे व अन्त में पेशवा ने भी 2 जून 1818 को अंग्रेज़ों के साथ सन्धि कर ली। उसे बदले में भारी-भरकम पेंशन (एक लाख पौण्ड सालाना) व अन्य सुविधाएँ दी गयीं।

इस लड़ाई से पेशवा को क्या मिला, यह तो ऊपर स्पष्ट ही है। पर दलितों को अंग्रेज़ों की सेवा के बदल में क्या मिला, इसके लिए हमें इतिहास में थोड़ा और आगे बढ़ना पड़ेगा। जाति व्यवस्था पर ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के प्रभावों के बारे में काफ़ी विवाद रहा है। अम्बेडकर व कुछ जाति विरोधी सुधारक मानते हैं कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने दलितों की हालात में बेहतर लाने का काम किया। इसके लिए वो पश्चिमी शिक्षा व सेना में मौक़ा देने का हवाला देते हैं। अगर समग्रता में देखा जाये तो ब्रिटिश शासन ने जाति व्यवस्था को और ज़्यादा मज़बूत किया व दलितों की स्थिति को राजनीतिक व आर्थिक रूप से ओर ज़्यादा अरक्षित बना दिया।

दो कारक इसमें महत्वपूर्ण थे।

पहला कारक था अंग्रेज़ों की भू-राजस्व व्यवस्था के बदलाव। पहले 1793 का स्थायी बन्दोबस्त व बाद में रयतवाड़ी व महालवारी बन्दोबस्त भूमिहीन दलितों के हितों के विरुद्ध थे। स्थायी बन्दोबस्त ने भूमि में निजी सम्पत्ति की शुरुआत की व ज़मींदारों को भूमि का मालिक बना दिया। इससे पहले राजा या केन्द्रीय सत्ता भूमि की विधिक स्वामी थी और अन्य सभी जागीरदारों-ज़मींदारों को प्रयोगाधिकार (यूज़रफ़्रक्ट) प्राप्त था। ज़मींदारों को कानूनी मालिक बनाने का काम अंग्रेज़ों ने किया। ज़ाहिर है ज़मींदार उच्च जातियों से ही आते थे। महालवारी बन्दोबस्त ने भूमि का मालिकाना ग्राम समुदाय को दिया व उसे ज़मीन बाँटने का अधिकार दिया। ज़्यादातर ग्राम समुदायों के प्रमुख उच्च जातियों से ही आते थे। यह दलित भूमिहीनों के साथ अन्याय था। रयतवाड़ी बन्दोबस्त इन दोनों की तुलना में सबसे ज़्यादा प्रगतिशील था, हालाँकि उसमें भी ज़मीन दलितों को नहीं बल्कि मध्यम किसान जातियों को दी गयी। बाद में इनको प्रशासनिक व तकनीकी शब्दावली में अन्य पिछड़ा वर्ग कहा गया। अंग्रेज़ों के इन बन्दोबस्तों ने दलितों की भूमिहीनता को और ज़्यादा स्थायी बना दिया। ग्रामीण उत्पादन व वर्ग सम्बन्धों में जो थोड़ी बहुत गतिमानता की सम्भावना थी, उसे भी इन भूमि राजस्व व्यवस्थाओं ने समाप्त कर दिया। यही कारण था कि रियासतों के उच्च जातीय ज़मींदार व शासक अंग्रेज़ी औपनिवेशिक शासन के सहयोगी व सामाजिक आधार बने रहे। यही कारण था कि सबसे ज़्यादा ब्राह्मणवादी व जातीय ताक़तें जैसे हिन्दू महासभा व संघ ब्रिटिशों के खिलाफ़ नहीं लड़े, बल्कि क्रान्तिकारियों के खिलाफ़ जासूसी की व अन्त तक ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के सबसे विश्वसनीय सहयोगी बने रहे। और यही कारण था कि जब अंग्रेज़ देश छोड़कर जाने लगे तो राजे-रजवाड़ों और ज़मींदारों का पूरा उच्च जाति वर्ग अंग्रेज़ों से न जाने की वन्दना कर रहा था और हाथ-पाँव जोड़ रहा था।

दूसरा कारक जो ब्रिटिश सत्ता ने पेश किया और जिसने जाति व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण का काम किया व साथ ही राजनीतिक-कानूनी औपचारिकीकरण किया, वो था एथनोग्राफ़िक राज्य का उभार। लोगों को गिनना, उनका वर्गीकरण करना ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के लिए अनिवार्य था। ब्रिटिश अनुभववाद और प्रत्यक्षवाद ने जोकि ब्रिटिश

जाति अन्त की परियोजना ऐसे अस्मितावाद से आगे नहीं बल्कि पीछे जायेगी!

(पेज 12 से आगे)

शासकों की विचारधारा था, ब्रिटिश शासकों की यह समझ बनायी थी कि भारत पर अच्छी तरह से शासन करने के लिए भारत को अच्छी तरह से जानना आवश्यक है। 1784 में ओरियण्टल सोसायटी ऑफ़ बंगाल की स्थापना से लेकर एचएच रिसले द्वारा की गयी जनगणना तक अंग्रेजों की कार्यवाही उनके इसी प्रयास का उदाहरण है। उन्होंने औपनिवेशिक राज्य के शासन सिद्धान्त के अनुसार असंख्य सर्वे, अध्ययन व शोध किये व वर्गीकरण किया। उन्होंने पहली बार अनुसूचित जातियों को परिभाषित किया व उनका कानूनी अस्तित्व बनाया जो ज्यादा ठोस व कठोर था और बदलाव के लिए अभेद्य था। इसने जाति व्यवस्था के मजबूतीकरण व सुदृढ़ीकरण को अंजाम दिया। इस बात को अब तमाम इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं।

यह सच है कि अंग्रेजों ने पश्चिमी शिक्षा के दरवाजे कुछ रियासतों में दलितों के लिए आंशिक तौर पर खोले। साथ ही ईसाई मिशनरियों ने भी दलितों व उत्पीड़ित तबकों के बीच कुछ शिक्षण कार्य किया। लेकिन औपनिवेशिक भारत का विस्तार देखते हुए ये बहुत ही कम था। दूसरा, अंग्रेजों ने ये सुधार दलितों के उत्थान के लिए नहीं किये, जैसा कि आनन्द तेलतुम्बडे ने कहा है - यह औपनिवेशिक सत्ता की अफ़सरशाही के लिए विश्वसनीय व वफ़ादार बुद्धिजीवी तैयार करने के औपनिवेशिक निर्माण का उपोत्पाद (by-product) था। अंग्रेजों की अपनी ज़रूरतें थीं। और अगर उपोत्पाद के तौर पर मिले आंशिक लाभ की तुलना अंग्रेजी शासन द्वारा दलितों के दमन और शोषण को मिले ढाँचागत स्वरूप की हानि से की जाये तो लाभ की तुलना में हानि कई गुना ज्यादा थी।

सेना में दलितों की भर्ती के प्रश्न पर ऐतिहासिक तथ्यों को स्पष्ट करना बेहद ज़रूरी है। अंग्रेजों ने सेना में विभिन्न तबकों को भर्ती किया, खासकर वे जो पहले से किसी राजा की सेना में काम करते रहे थे। महार भी एक ऐसी ही दलित जाति थी जो शिवाजी के समय से सेना में रही थी। अंग्रेजों ने महारों को सेना में जगह तो दी थी पर ब्राह्मणों के दबाव में पहले तो उनको लड़ाकू पदों से बाहर किया गया व बाद में मार्शल रेस का सिद्धान्त लाकर उनकी भर्ती बन्द भी कर दी थी। गौरतलब है कि इस संगठन ने भी अपने द्वारा प्रकाशित पुस्तिका में इस तथ्य को स्वीकार किया है। इससे भी औपनिवेशिक सत्ता व ब्राह्मणवाद के अपवित्र गठबन्धन का पता लगता है। महार के अलावा अन्य सब की भर्ती जारी रखी गयी थी जैसे सिख, गोरखा आदि। दूसरी बात, इसमें भी ध्यान देने वाली बात यह है कि अंग्रेजों ने दलितों

में भी सिर्फ़ एक इलाक़े में व एक जाति (बॉम्बे आर्मी में महार) को ही सेना में भर्ती किया था, किसी अन्य दलित जाति को नहीं।

ब्रिटिश शासन का दूसरा प्रभाव कुछ उद्योगों का शुरू होना था। एक औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत सीमित व विनियमित पूँजीवादी विकास होने से निश्चित तौर पर जाति व्यवस्था के कुछ आयाम कमजोर हुए। शहरी मज़दूर वर्ग के उभार ने भी इसमें योगदान किया। संक्षेप में, उद्योगों, विशेषकर रेलवे के पूरे नेटवर्क के निर्माण और शहरीकरण ने जाति व्यवस्था के कुछ आयामों को कमजोर किया। कार्ल मार्क्स ने इस विकास के बारे में पहले ही इंगित किया था व बाद में अम्बेडकर ने अपने तरीक़े से यही बात कही थी। पर अगर हम ब्रिटिश शासन के जाति व्यवस्था पर प्रभाव का समग्रता में मूल्यांकन करें तो निस्सन्देह इसने उच्च जातियों के शासन का सुदृढ़ीकरण किया, औपनिवेशिक सत्ता के हित में ब्राह्मणों व ब्राह्मणवादी विचारधारा का सहयोजन किया। इसने दलितों व अन्य निम्न जातियों की स्थिति को और अरक्षित बनाया। औपनिवेशिक शासन ने कुछ जनजातियों को कानूनी रूप से आपराधिक जनजाति के रूप में वर्गीकृत किया व उन पर ऐतिहासिक अन्याय किया। ये आपराधिक जनजातियों का टैग भारत के संविधान ने भी तुरन्त नहीं हटाया था।

स्पष्ट है कि भारत की जनता को बाँटने के लिए अंग्रेजों ने यहाँ की जाति व्यवस्था का भी इस्तेमाल किया था और धर्म का भी। अंग्रेजों ने जाति व्यवस्था को खत्म करने के लिए सचेतन तौर पर कुछ खास नहीं किया। ऐसे में कोई अपने आप को जाति अन्त का आन्दोलन कहे (रिपब्लिकन पैन्थर अपने को जाति अन्त का आन्दोलन घोषित करता है) और भीमा कोरेगाँव युद्ध की बरसी मनाने को अपने सबसे बड़े आयोजन में रखे तो स्वाभाविक है कि वह यह मानता है कि अंग्रेज जाति अन्त के सिपाही थे! हकीकत हमारे सामने है। ऐसे अस्मितावादी संगठन जाति अन्त की कोई सांगोपांग योजना ना तो दे सकते हैं और ना उस पर दृढ़ता से अमल कर सकते हैं। हताशा-निराशा में हाथ-पैर मारते ये कभी भीमा कोरेगाँव जयन्ती मनाते हैं तो कभी 'संविधान बचाओ' जैसे खोखले नारे देते हैं। अपनी हास्यास्पद ऐतिहासिक समझदारी का एक नमूना ये यहाँ और भी पेश करते हैं जब ये आज की फ़्रासीवादी राज्यसत्ता को नयी पेशवाई बोलते हैं। पेशवाई सिर्फ़ ब्राह्मणवाद नहीं था बल्कि निश्चित और विशिष्ट आर्थिक सम्बन्ध भी थे। यह सामन्ती उत्पादन सम्बन्धों और सामन्ती विखण्डित राज्यसत्ता की नुमाइन्दगी भी करता था। ब्राह्मणवाद वह विचारधारा थी जिसके जरिये

पेशवाई अपने सामन्ती शासन व उत्पीड़न को एक विचारधारात्मक व न्यायिक-विधिक मान्यता प्रदान करती थी। इतिहास गवाह है कि भारत में उत्तरवैदिक काल से लेकर अभी तक जितनी भी शोषक-उत्पीड़क व्यवस्थाएँ आयी हैं, उन्होंने अपने शोषण-उत्पीड़न को वैध ठहराने के लिए ब्राह्मणवादी विचारधारा का इस्तेमाल किया है। चाहे वह 16 जनपदों के युग की प्राक्-सामन्ती शोषक व्यवस्था हो, गुप्त वंश की सामन्ती व्यवस्था हो, यहाँ तक कि दिल्ली सल्तनत का मुस्लिम शासन हो (गौरतलब है कि चौदहवीं सदी में फ़िरोज़शाह तुग़लक़ ने बंगाल की एक मध्यजाति को निचला दर्जा देने का फ़रमान जारी कर उसकी अवनति करा दी थी!), मुग़ल शासन हो, ब्रिटिश शासन हो या फिर स्वातन्त्र्योत्तर भारत का पूँजीवादी शासन हो; सभी शोषक-शासक वर्गों ने जाति व्यवस्था को अपने आर्थिक-सामाजिक सम्बन्धों के अनुसार सहयोजित, पुनर्परिभाषित किया है और नये रूपों में ढाला है; अगर हम इस यथार्थ को नहीं समझते और यह समझते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों और संहिताओं ने जाति व्यवस्था बनायी, तो हम जाति-वर्ग व्यवस्था में पिछले लगभग साढ़े तीन हजार साल में आये बदलावों को व्याख्यायित नहीं कर सकते हैं। ब्राह्मणवाद एक ऐसी विचारधारा है जो कि भारतीय इतिहास सन्दर्भों में सभी शासक वर्गों को एक बेहद उपयोगी विचारधारात्मक उपकरण मुहैया कराती है, जिससे कि वे अपने शोषण व दमन को जायज़ ठहरा सकें। पूँजीवादी व्यवस्था में यह एक अलग रूप में घटित होता है और उससे पहले की व्यवस्थाओं में अलग-अलग तरीक़ों से। लेकिन जब तक किसी शोषक अल्पसंख्या का शासन भारत में रहेगा, तब तक ब्राह्मणवाद और जाति व्यवस्था बनी रहेगी, भले ही यह नयी व्यवस्था के अनुरूप ढलती रहे। जिस प्रकार अमेरिका में कोई भी शोषक शासक वर्ग नस्लवाद का अपने तरीक़े से प्रयोग अवश्य करेगा, उसी प्रकार भारत में कोई भी शोषक शासक वर्ग जातिवाद और ब्राह्मणवाद का अपने अनुसार प्रयोग अवश्य करेगा। इसलिए चाहे पेशवाई हो या आज का पूँजीवादी शासन, ये दोनों ही बदली हुई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों व वर्ग सम्बन्धों के अनुसार ब्राह्मणवाद व जाति व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन लाते हैं और उनका अपनी लेजिटिमाइजिंग विचारधारा के रूप में प्रयोग जारी रखते हैं। क्या इससे यह नतीजा निकलता है कि आज की फ़्रासीवादी मोदी सरकार नयी पेशवाई है? इससे ज्यादा अनैतिहासिक, अज्ञानतापूर्ण और मूर्खतापूर्ण बात और क्या हो सकती है? आज के फ़्रासीवादी पूँजीवादी शासन का राजनीतिक, आर्थिक,

सामाजिक व ऐतिहासिक सन्दर्भ 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध की पेशवाई से एकदम भिन्न है। यही कारण है कि उस दौर की जाति व्यवस्था और ब्राह्मणवाद और आज की जाति व्यवस्था और ब्राह्मणवाद के प्रकार्यों में भी काफ़ी अन्तर है। लेकिन ऐसी बातों को रिपब्लिकन पैन्थर्स जैसे अस्मितावादी समझें, इसकी उम्मीद करना बेकार है। मूल बात यह है कि आज यह अस्मितावाद केवल नुक़सान पहुँचा रहा है। किसी भी दमित अस्मिता के संघर्ष के प्राथमिक दौर में अस्मिता-निर्माण की एक मंजिल होती है, जिसे हम एक सामाजिक संस्तर/समुदाय के तौर पर उसके अपने अस्तित्व के बारे में सचेत बनने की मंजिल कह सकते हैं। लेकिन यदि वर्ग संघर्ष की समूची प्रक्रिया के आगे बढ़ने के साथ यदि कोई भी दमित समुदाय इस अस्मिता निर्माण और उसके सुदृढ़ीकरण पर ही रुक जाता है, तो यह उसके लिए घातक होता है। कोई भी परिधिगत या अल्पसंख्यक समुदाय उपरोक्त प्राथमिक मंजिल के अलावा, अस्मितावाद, अस्मिता निर्माण व सुदृढ़ीकरण पर रुका रहता है, तो वह अन्य अस्मिताओं को भी जाने-अनजाने मजबूत करता जाता है। मिसाल के तौर पर, किसी एक अस्मिता को अन्य अस्मिताओं को सुदृढ़ किये बिना नहीं मजबूत बनाया जा सकता क्योंकि अस्मितावाद का बुनियादी तर्क ही 'अन्यकरण' (othering) है। ऐसे तर्क का लाभ हमेशा बहुसंख्यकों को मिलेगा। अम्बेडकर का यह कहना एक मायने में सही था कि हिन्दू समाज की मूल विभाजक रेखा स्पृश्य और अस्पृश्य के बीच है। यदि यह बात सही है, तो अस्मितावाद का लाभ किसे मिलेगा? आज तक किसे मिलता आया है? यह उच्च वर्ग के "उच्च" व "उच्च-मध्य" जाति के लोगों को मिलेगा और अस्मितावाद का यह तर्क उनकी मदद करेगा कि ये लोग अपनी ही जाति के ग़रीबों और मेहनतकशों को भी जातिवाद और जातिगत श्रेष्ठतावाद के उन्माद में बहा ले जायें, क्योंकि इस ग़रीब ग़ैर-दलित आबादी में भी जातिगत पूर्वाग्रह मौजूद हैं। ऐसे में, अस्मितावाद किसे लाभ पहुँचायेगा? मराठा मूक मोर्चा ने क्या ठीक यही सिद्ध नहीं किया है? इस प्रकार की जातिगत गोलबन्दी के मजबूत होने का लाभ क्या दलितों को मिल सकता है? लेकिन इस सीधे से तर्क को भी अस्मितावादी नहीं समझ पाते हैं। ख़ैर, उनसे यह आशा करना भी व्यर्थ है।

एक अन्य तथ्य जिसकी ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना ज़रूरी है, वो है रिपब्लिकन पैन्थर्स की बौद्धिक कायरता व अवसरवादिता। हिन्दी जगत की प्रसिद्ध बौद्धिक पत्रिका 'समयान्तर' के नवम्बर 2017 अंक में रिपब्लिकन पैन्थर्स के सुधीर

धवले का लेख 'जाति और भारत का इंक़लाब' प्रकाशित हुआ है। इस लेख को पढ़कर कोई भी ये समझ सकता है कि बुद्धिजीवियों के बीच में जहाँ एक तरफ़ ये कुछ ओर बोलते हैं, वहीं जनता के बीच अपनी अस्मितावादी राजनीति बचाने के लिए तुष्टीकरण की नीति अपनाते हैं। समयान्तर के अपने लेख में सुधीर धवले लिखते हैं - "अंग्रेज़ी हुकूमत ने ब्राह्मणवादी हिन्दू व्यवस्था और विषमता पर आधारित जाति व्यवस्था को न तो बदला और न ही छुआ। दरअसल इसने जाति व्यवस्था को कानूनी व्यवस्था का अंग बनाया और इस प्रकार इसे नया जीवनदान दिया। ... यानी अंग्रेज़ों ने अपने हित साधन के लिए जाति के अस्तित्व का इस्तेमाल किया।" (पेज 15, समयान्तर, नवम्बर 2017)। हालाँकि इनकी ये अवस्थिति भी काफ़ी समय के बाद बनी है जब पूरे देश के जाति विरोधी क्रान्तिकारी आन्दोलन में व साथ ही स्वतन्त्र इतिहासकारों में एक राय बन चुकी है कि अंग्रेज़ों ने जाति व्यवस्था को मजबूत ही किया। जाति व्यवस्था के कुछ आयाम कमजोर हुए वो एक ऐतिहासिक गति के उत्पाद थे। भीमा कोरेगाँव पर जारी इनकी मराठी पुस्तिका जो जनता के बीच वितरित की जा रही है, उसमें इस महत्वपूर्ण तथ्य का कहीं जिक्र नहीं है। क्योंकि अगर ये उसका जिक्र वहाँ करते तो अगला सवाल दलित जनता इनसे यही करती कि फिर भीमा कोरेगाँव से दलितों को क्या मिला?

यह तथ्य है कि रिपब्लिकन पैन्थर्स द्वारा किये जा रहे इस अस्मितावादी सर्कस से जाति अन्त की परियोजना आगे नहीं बढ़ सकती है। **जाति अन्त की परियोजना इतिहास का एक सही सटीक मूल्यांकन करने और एक वर्ग आधारित जाति विरोधी आन्दोलन खड़ा करके ही आगे बढ़ सकती है। पिछले कई दशकों से इस बुनियादी बात को न समझने के कारण ही महाराष्ट्र समेत देश के तमाम हिस्सों में जाति अन्त आन्दोलन एक गोल चक्कर में घूम रहा है और उन जुझारू छात्रों-युवाओं की क्रतारों में भारी हताशा और ऊब पैदा कर रहा है जो अपना सर्वस्व न्योछावर कर जाति अन्त की लड़ाई में कूद चुके हैं। यह कुचक्र तोड़ना आज बेहद ज़रूरी है। इसके लिए क्रान्तिकारी साहस की आवश्यकता है, लेकिन हम जाति-अन्त योद्धाओं के पास और कोई रास्ता नहीं है।** अगर हम जाति अन्त के संघर्ष में आगे बढ़ना चाहते हैं तो हमें ड्यूईवादी व्यवहारवाद और अस्मितावाद से छुटकारा पाना ही होगा।



तमस

"तुम गली में रहनेवाले म्लेच्छों को जानते हो?"

रणवीर ने शम्भू से पूछा था।

"हाँ सरदार, मैं इन्हें जानता हूँ महमूद धोबी हमारे घर के कपड़े धोता है, और पीर की क़ब्र के सामने जो मियाँजी रहते हैं, वे मेरे दादाजी के साथ बहुत उठते-बैठते हैं।"

"तुम इस गली में काम नहीं करोगे।" रणवीर ने निर्णायक स्वर में कहा। शम्भू हतोत्साह हो गया।

आज ये लोग अपने पहले शिकार पर धावा बोलनेवाले थे। चारों वीर उत्तेजित थे। अभी तक केवल तैयारी चलती रही थी, आज रणभूमि में जौहर दिखाने का समय आ गया था। "आज रण में जाके धूम मचा दे बेटा!" धर्मदेव के कानों में वीररस भरे इस गीत की पंक्ति देर से गूँज रही थी। मनोहर तनिक चिन्तित था। वह अपनी माँ से कुछ भी कहे बिना चला आया था, और अब दिन के दो बजा चाहते थे और मनोहर को डर था कि चौका समेटने के बाद उसकी माँ उसे ढूँढ़ने निकल पड़ेगी और कौन जाने ढूँढ़ती-ढूँढ़ती इधर ही आ निकले?

रणवीर ने अन्य तीनों योद्धाओं को 'शस्त्रागार' में इकट्ठा किया और रणनीति पर विचार करते हुए बोला, "शत्रु पर उबलता तेल डालने का समय अभी नहीं आया है। उबलता तेल उस समय डाला जाता है जब शत्रु अपने दुर्ग पर हमला कर दे और आप हथियारों से उसका मुकाबला न कर सकते हों।" फिर उसने तनिक सोचकर कहा, "यहाँ केवल छुरा चलेगा, कमानादार छुरा।"

फिर उसने इन्द्र को सम्बोधित करके कहा, "एक बार फिर पैतरा करके दिखाओ। उठाओ छुरा दासे पर सो।"

इन्द्र फुरती से छुरा उठा लाया। कमरे के बीचोंबीच दोनों टाँगें फैलाये वह क्षण-भर के लिए खड़ा रहा। छुरे की मूठ उसके दायें हाथ में थी और उसका फल पीछे की ओर था। फिर बायाँ क़दम उठाकर वह उछला, और हवा में अर्द्धवृत्त काटकर फिर दोनों टाँगें फैलाये रणवीर की पीठ की ओर मुँह किये फ़र्श पर उतरा। इसी बीच उसने रणवीर की कमर को निशाना बनाते हुए उलटे हाथ से छुरे के वार का संकेत किया था।

रणवीर ने सिर हिलाया, "शत्रु की छाती अथवा पीठ को कभी भी निशाना नहीं बनाओ। वार हमेशा कमर में करो या पेट में। और घुमावदार छुरा घोंपने के बाद उसे अन्दर ही अन्दर थोड़ा मोड़ दो, इससे अंतर्दिशा बाहर आ जायेगी। अगर तुम भीड़ में शत्रु पर वार करते हो तो छुरा बाहर खींचने की कोशिश नहीं करो, उसे वहीं रहने दो और भीड़ में खो जाओ।"

रणवीर वही कुछ बोले जा रहा था जो उसने मास्टर देवव्रत के मुँह से सुना था।

थोड़ी देर बाद दल दो हिस्सों में

बँट गया था। पहले हमला इन्द्र के हाथों किया जायेगा। इसलिए इन्द्र, शम्भू और सरदार शस्त्रागार को छोड़कर नीचे ड्योढ़ी में आ गये, जबकि मनोहर ऊपर बना रहा। फ़ैसला किया गया कि सड़क की ओर छज्जे पर खड़ा सैनिक नज़र रखेगा और गली में आने-जाने वाले लोगों पर रणवीर और इन्द्र और शम्भू और रणवीर के हुकम से इन्द्र ड्योढ़ी में से निकलकर शत्रु पर हमला करेगा। गली में घूमनेवाले दरवाजे को थोड़ा-सा खोल देने पर सड़क का कुछ हिस्सा और गली का शुरू का हिस्सा नज़र आते थे। पीपल के तने के पार सड़क का हिस्सा था जो दोपहर की धूप में चमक रहा था।

गली के सामने एक ताँगा रुका। रणवीर ने दरवाजे को लगभग पूरा मुँद दिया और एक पतली-सी दरार में से बाहर की ओर देखने लगा।

"कौन है?" इन्द्र ने फुसफुसाकर पूछा।

रणवीर चुप रहा। अन्य दो सैनिकों ने भी आगे बढ़कर दरार पर आँख लगायी। "जलालखान है। नवावज़ादा जलालखान।" शम्भू बोला, "यह सड़क के किनारे सामनेवाले मकान में रहता है। हमारे मुहल्ले को बहुत बड़ा रईस है। डिप्टी-कमिश्नर से मिलने जाता है।" शम्भू एक साँस में कह गया।

दरार में से क्षण-भर के लिए उसका सफ़ेद तुर्रा, चढ़ी हुई मूँछें और लाल दमकता चेहरा नज़र आये। पर जैसे वह सामने आया वैसे ही ओझल भी हो गया। गली में से गुज़रते हुए उसकी सरसराती सलवार और चरमराते जूते सुनायी दिये। कुछ निर्णय कर सकने के पहले ही वह अपने घर के अन्दर जा चुका था। तीनों वीर-सैनिक ठगे-से खड़े रह गये। वह यों भी क्रद में बहुत ऊँचा-लम्बा था। उसे सामने से जाता देखकर तीनों सहम-से गये थे और सोचने का मौक़ा ही नहीं मिला था।

मास्टरजी ने कहा था कि अपने शत्रु की ओर ध्यान से कभी नहीं देखो, इससे निश्चय डगमगाने लगता है। किसी भी जीव की ओर ध्यान से देखो तो उसके प्रति दिल में सहानुभूति पैदा होने लगती है। ऐसा कभी नहीं होने देना चाहिए।

पीछे गली में कोई दरवाज़ा खुला और फिर खड़ाक-से बन्द हो गया। तीनों के कान खड़े हो गये। रणवीर ने दरवाजे के पर्दे को इस तरह से खोला कि पर्दों के बीच की दरार गली की ओर खुल गयी।

"कौन है?!" इन्द्र ने फुसफुसाकर पूछा।

"म्लेच्छ है।" रणवीर बोला। दोनों मित्र ऊपर-नीचे दरार से आँख लगाकर खड़े हो गये। एक दाढ़ीवाला बड़ी उम्र का आदमी गली में से चलता हुआ सड़क की ओर आ रहा था।

"मियाँजी हैं।" शम्भू पहचानते हुए बोला, "पीर की क़ब्र के सामनेवाले घर में रहते हैं। इस वक्रत मस्जिद में नमाज़

पढ़ने जा रहे हैं। रोज़ इस वक्रत नमाज़ पढ़ने जाते हैं।"

"चुप रहो।"

मियाँ गली का थोड़ा-सा हिस्सा लाँघकर पीपल के पेड़ के पास आया और वहाँ से बायें हाथ घूम गया। वह काले रंग की वास्कट पहने था और नीचे सलवार और ढीली-सी चप्पल। उसके दायें हाथ में छोटी-सी तसबीह लटक रही थी। बूढ़ा होने के कारण उसकी पीठ झुकी थी और वह धीरे-धीरे चलता जा रहा था।

"जाऊँ?" इन्द्र ने झट-से सरदार से पूछा।

"नहीं, अब वह सड़क पर पहुँच चुका है।"

"तो क्या हुआ?"

"नहीं। सड़क पर हमला करने की मनाही है।"

शम्भू को इन्द्र की आवाज़ में उतावलापन लगा, जबकि स्वयं शम्भू का मन शिथिल-सा पड़ रहा था। इन्द्र के पूछने पर शम्भू को एक अजीब धक्का-सा लगा था। सरदार की मनाही पर उसे मन ही मन राहत-सी मिली।

कुछ देर तक वे फिर दरवाजे के पीछे खड़े रहे। वक्रत बीतता जा रहा था। चार बजे नल खुल जायेगा और गली की औरतें घड़े उठाये नल पर पहुँच जायेंगी। दोपहर बीतते ही इक्का-दुक्का और लोग भी बाहर निकलने लगेंगे।

इस बीच एक-एक करके दो आदमी गली में दाखिल हुए। एक के हाथ में साइकल थी और आँखों पर चश्मा था।

"यह बाबू चूनीलाल है। यह एक दफ़्तर में काम करता है। इसके पास कुत्ता है।"

और दूसरा एक सिख सरदार गली में आया, जो कन्धे पर गठरी उठाये हुए था। दोनों बारी-बारी से आये और अपने पटपटाते जूतों के साथ गली लाँघ गये।

तभी उन्हें फिर किसी के क़दमों की आहट मिली। इन्द्र ने दरार में से झाँककर देखा और रणवीर की कोहनी को छू दिया।

"कौन है?"

इन्द्र कुछ नहीं बोला और बाहर देखता रहा।

पटपटाते हुए जूतों की आवाज़ आयी। रणवीर झट-से दरार में से झाँकने लगा। शम्भू भी दरार के साथ चिपक गया था।

"कौन है?"

"कोई खोमचेवाला है।" इन्द्र ने फुसफुसाकर कहा।

"नहीं, इत्र-फुलेल बेचता है। दूर कहीं रहता है, इस वक्रत रोज़ इधर से गुज़रता है। म्लेच्छ है।"

एक भारी-भरकम आदमी, मेहँदी से रँगी मूँछों और कूची दाढ़ीवाला अपने अगल-बगल बहुत-से थैले लटकाये पीपल के पेड़ के नीचे से होकर गली के अन्दर आ गया था। बोझ के कारण

उसके माथे पर पसीने की बूँदें छलक आयी थीं। उसके दायें कान में रुई के फाहे थे और ऊपर दो-तीन सलाइयाँ पगड़ी में खोस रखी थीं।

रणवीर को लगा जैसे उसकी पीठ-पीछे कोई हरकत हुई हो। उसने घूमकर देखा। इन्द्र का हाथ अपनी जेब में रखे घुमावदार छुरे पर चला गया था।

क्षण बीत रहे थे और निर्णय का वक्रत आ गया था। यह आदमी म्लेच्छ था, अजनबी था, थैलों से लदा था, न भाग सकता था, न अपने को बचा सकता था, और थका हुआ था। सभी गुण मौजूद थे। कुछ सवालियों का जवाब मस्तिष्क नहीं देता, अन्तःप्रेरणा देती है। क्षण बीत रहे थे और फेरीवाला गली में आगे बढ़ता जा रहा था। रणवीर ने आँख का इशारा किया और इन्द्र लपककर बाहर हो गया। उसके बाहर निकलने पर क्षण-भर के लिए बाहर की रोशनी का चुँधियाता पुंज जैसे अन्दर घुस आया। पर रणवीर ने फिर से दरवाज़ा बन्द कर दिया।

कोई आहट या आवाज़ नहीं थी। रणवीर और शम्भू दम साधे दरवाजे के पीछे खड़े थे। रणवीर अत्यधिक उत्तेजित हो उठा। उससे न रहा गया। उसने धीरे-से दरवाज़ा खोला और सिर बाहर निकालकर देखा। गली में कुछ दूरी पर इत्रफ़रोश झूलता हुआ चला जा रहा था। थैलों के बोझ के कारण उसकी पीठ झुकी हुई थी। और इन्द्र, बौना छोटा-सा इन्द्र, उससे कुछ दूर उसके पीछे-पीछे चलता जा रहा था। इन्द्र का हाथ कुरते की जेब में था और वह उचक-उचककर चल रहा था।

रणवीर के लिए दरवाजे में से सिर निकालकर गली में झाँकना उतना ही असम्भव था जितना दरवाज़ा बन्द करके उसके पीछे खड़े रहना। उसका सभी बातों पर नियन्त्रण था, परन्तु अपने बाल-सुलभ कुतूहल पर कोई नियन्त्रण नहीं था। तभी उसे शम्भू ने पीछे खींच लिया। शम्भू डरा हुआ था और उसकी टाँगों में जैसे पानी भर गया था। आखिरी झलक में रणवीर केवल इतना ही देख पाया था कि इन्द्र उस भारी-भरकम म्लेच्छ के साथ-साथ जा रहा था और दोनों गली का मोड़ काट रहे हैं।

शम्भू ने साँकल चढ़ा दी और दोनों अँधेरे में एक-दूसरे को देखते खड़े रह गये। दोनों बुरी तरह हाँफ रहे थे। शम्भू के लिए खड़े हो पाना असम्भव हो रहा था, जबकि रणवीर बाहर जाने के लिए अधीर था।

गली का मोड़ मुड़ने पर सहसा इत्रफ़रोश की नज़र बालक पर पड़ गयी। अपने पटपटाते जूतों के कारण शायद वह उसके पाँवों की आहट नहीं सुन पाया था।

इत्रफ़रोश मुस्करा दिया।

"किधर जा रहे हो बेटे इस वक्रत?" उसने कहा और मुस्कराते हुए अपना

हाथ बढ़ाकर इन्द्र के सिर पर रख दिया।

इन्द्र ठिठक गया और एकटक उसके चेहरे की ओर देखने लगा। उसका हाथ अपनी जेब में था। इन्द्र के अवचेतन में यह बात उठी कि इस आदमी के गाल फूले हुए हैं और मास्टरजी ने एक बार कहा था कि फूले हुए गालोंवाले लोग बुजदिल होते हैं और उनका मेदा ख़राब होता है और वे भाग नहीं सकते, जल्दी हाँफने लगते हैं। और यह आदमी सचमुच हाँफ रहा था।

इन्द्र अपने शिकार पर झपटने के लिए पैर तौल रहा था। उसकी आँखें अभी भी म्लेच्छ के चेहरे पर गड़ी थीं।

इत्रफ़रोश को लड़का मासूम-सा लगा, छोटी उम्र का, कोमल-सा जो शायद आश्रय खोजता हुआ उसके पीछे-पीछे चला आया था। शायद डरा हुआ था, शहर में आज सभी लोग डरे हुए थे।

"कहाँ रहते हो?" चलो मेरे साथ आते जाओ। आज के दिन बाहर अकेले नहीं घूमना चाहिए।"

लेकिन इन्द्र टस से मस नहीं हो रहा था। अभी भी वह अत्रफ़रोश के चेहरे की ओर घूरे जा रहा था।

"तेली मुहल्ले तक मैं तुम्हें पहुँचा दूँगा।" आगे कहीं जाना हुआ तो तुम्हें किसी के सुपुर्द कर दूँगा। आज शहर में गड़बड़ है।"

और बिना बालक के उत्तर की प्रतीक्षा किये वह घूमकर आगे बढ़ने लगा।

क्षण-भर के लिए इन्द्र वहीं ठिठक खड़ा रहा, फिर साथ हो लिया।

आसपास के घरों में चुपची छापी हुई थी। उनकी ड्योढ़ियों में इतना अँधेरा था कि आँखें फाड़-फाड़कर भी देखो तो भी कुछ नज़र नहीं आता था।

"मुझे भी आज फेरी पर नहीं निकलना चाहिए था," उसने इन्द्र से कहा, "आज भी कोई दिन है फेरी करने का? सारे शहर में सूखा पड़ा है। पर मैंने सोचा घर पर बैठकर क्या करूँगा, दो-चार आने की जुगाड़ हो जाये तो क्या बुरा है, दूकानदार घर पर बैठा रहे तो खायेगा कहाँ से?" और इत्रफ़रोश हँस दिया।

पानी का नल नज़दीक आ रहा था। नल में पानी नहीं था और उसके नीचे पत्थर की सिल जो घिस-घिसकर गहरी हो गयी थी, सूखी पड़ी थी। और उसके आसपास दो-तीन बर्रे उड़ रहे थे। कुछ ही दिन पहले तक इन्द्र बर्रे पकड़ा करता था।

"इत्र के चार फाहे भी हमसे ले ले तो हमारी चवन्नी खरी हो जाती है।" इत्रवाले ने जैसे अपने-आपसे बात करते हुए कहा। वक्रत काटने के लिए वह बतियाना चाहता था या शायद शहर की सूनी गलियाँ लाँघने के बाद वह ख़ुद डरा हुआ था।

तमस

(पेज 14 से आगे)

"हमें एक-एक गली का मालूम है कि वहाँ कौन इत्र खरीदता है। जिस मर्द की दो बीवियाँ हों, वह ज़रूर इत्र लेता है, वह वसमा भी लेगा और सुरमा भी लेगा। वह मर्द भी इत्र खरीदता है जो उम्र में बड़ा हो और जिसकी जवान बीवी हो। अच्छा, और बताऊँ!" वह बच्चे का मन बहलाने के लिए बोले जा रहा था।

इत्रफ़रोश की बातों के ही कारण इन्द्र सँभल गया था और पैर मजबूती से चल रहे थे और कमानीदार चाकू की मूठ को ही उसने मजबूती से पकड़ रखा था। उसके मन में एकाग्रता आने लगी थी, उसकी आँखें इत्रफ़रोश की कमर पर टिकने लगी थीं। वही एकाग्र दृष्टि जिससे अर्जुन ने पेड़ पर बैठे पक्षी की आँख को फोड़ा था। इत्रफ़रोश के बायें कन्धे से झूलता थैला बार-बार घड़ी के पेण्डुलम की तरह उसकी कमर के आगे हिल रहा था। उसका गाढ़े का कुरता बोटलों के थैले के नीचे कुछ-कुछ उभरा हुआ था।

नल पार करते ही इन्द्र की सारी चेतना जैसे उसके दायों हाथ में आ गयी। नल के आगे का फ़ासला एक-एक बालिशत जैसे उसके मस्तिष्क में गिना जाने लगा था। बोटलों का थैला

झूल रहा था, कमर बार-बार सामने आ रही थी और इत्रफ़रोश के पटपटाते जूते उसके साथ-साथ बज रहे थे।

"बाज़ार में फाहे ज़्यादा बिकते हैं, घरों में इत्र और तेल ज़्यादा बिकता है," इत्रफ़रोश कह रहा था। सहसा इन्द्र लपका और उसने पैतरा मारा। इत्रफ़रोश को लगा जैसे उसके बायें हाथ कोई चीज़ ज़ोर से हिली है। उसे भास हुआ जैसे कोई चीज़ चमकी भी है। पर वह खड़ा होकर घूमकर देखे कि क्या बात है, तब तक उसे थैले के नीचे तीखी चुभन का-सा भास हुआ। इन्द्र का निशाना ठीक बैठा था। वार करने के बाद सरदार के आदेशानुसार उसने चाकू को थोड़ा मोड़ दिया था और अँतड़ियों के जाल में फँसा भी दिया था।

इत्रफ़रोश अभी पूरी तरह से मुड़ नहीं पाया था कि उसने देखा, लड़का पीछे की ओर भागा जा रहा है। उसे फिर भी समझ में नहीं आया कि क्या हुआ है। उसकी इच्छा हुई कि लड़के को आवाज़ देकर बुला ले, लेकिन तभी उसे अपने पैरों पर बहता खून नज़र आया और कमर में कुछ कराहता, कुछ डूबता-सा महसूस हुआ। मीठा-सा दर्द उठा, फिर

तेज़ नशतर-सा दर्द और वह डर के मारे बदहवास हो गया।

"ओ लोको, मार डाला! मुझे मार डाला! ओ लोको!..."

इत्रफ़रोश इतना घबरा गया था कि उसके मुँह से बोल नहीं फूट रहा था। वह कमर में लगे ज़ख़म से इतना नहीं मर रहा था जितना त्रास और भय से और भोले बालक द्वारा किये गये हमले से। उसके लिए अपने थैलों का बोझ उठा पाना असम्भव हो रहा था और उनके बोझ के नीचे ही वह मुँह के बल धड़ाम से गिरा।

इन्द्र के भागते पाँव उसे दो क्षण पहले साफ़ नज़र आ रहे थे, पर अब गली में उस लड़के का नाम-निशान नहीं था।

"ओ लोको!..." वह फुसफुसाया।

एक शिथिल-सी चीख उसके होंठों से निकली और उसकी आँखें गली के ऊपर फैले गहरे नीले आसमान के छोटे-से टुकड़े पर लग गयीं। वहाँ दो-तीन चीलें उड़ रही थीं। चीलें अब दो की जगह चार हो गयी थीं और आकाश की नीलिमा धीरे-धीरे हिलने और धूमिक पड़ने लगी थी।



सावित्रीबाई फुले के जन्मदिवस (3 जनवरी) के अवसर पर उनकी कुछ कविताएँ

1.

"ज्ञान के बिना सब खो जाता है ज्ञान के बिना हम जानवर बन जाते हैं इसलिए खाली न बैठो और जा कर शिक्षा लो तुम्हारे पास सिखने का सुनहरा मौक़ा है इसलिए सीखो और जाति के बन्धन तोड़ो"

2.

"गुलाब का फूल और फूल कनेर का रंग रूप दोनों का एक सा एक आम आदमी दूसरा राजकुमार गुलाब की रौनक देसी फूलों से उसकी उपमा कैसी?"

3.

"पत्थर को सिन्दूर लगाकर और तेल में डुबोकर जिसे समझा जाता है देवता वो असल में होता है पत्थर"

4.

"हमारे जानी दुश्मन का नाम है अज्ञान उसे धर दबोचो मजबूत पकड़ कर पीटो और उसे जीवन से भगा दो"

रिपोर्ट : "महान अक्टूबर क्रान्ति, समाजवादी संक्रमण की समस्याएँ और इक्कीसवीं सदी की नयी समाजवादी क्रान्तियाँ"

अक्टूबर क्रान्ति शतवार्षिकी समिति द्वारा गत 23 दिसम्बर को पटना में "महान अक्टूबर क्रान्ति, समाजवादी संक्रमण की समस्याएँ और इक्कीसवीं सदी की नयी समाजवादी क्रान्तियाँ" विषय पर एक व्याख्यान का आयोजन किया गया था, जिसमें वक्ता के तौर पर 'मज़दूर बिगुल' के सम्पादक अभिनव सिन्हा मौजूद थे। उन्होंने अपनी बात की शुरुआत बोलशेविक क्रान्ति के सौ वर्ष पूरे होने तथा उसके कारण दुनिया पर पड़े प्रभाव से की जिसने पूरी दुनिया को झकझोर दिया था। इस घटना ने मानव इतिहास में एक नये युग की शुरुआत की। उन्होंने बताया कि यह पूरी दुनिया में पहला ऐसा प्रयोग था जिसमें शोषक अल्पसंख्या पर शोषित बहुसंख्या का शासन था। यह एक ऐसा वर्ग समाज था जिसमें राज्य सत्ता और वर्ग संघर्ष भी था। अतः कम्युनिस्ट समाज का समतामूलन सपना अभी सफल नहीं हो पाया था।

उन्होंने इसके युगान्तरकारी महत्व को बताते हुए कहा कि इस दिन को याद करना इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि आज की दुनिया कई सारी प्रगतिशील एवं प्रतिक्रियावादी सम्भावनाओं को लिये हुए है, जिसमें दोनों सकारात्मक और नकारात्मक पहलू हैं। उन्होंने फ्रांस, ऑस्ट्रिया और भारत का उदाहरण देते हुए बताया कि कैसे इन देशों में फ़ासीवादी शक्तियाँ उभर कर सामने आ रही हैं। आज पूँजीवाद संकटग्रस्त अवस्था में है। 1970 के दशक से यह भीतर से एक स्थायी मन्दी का शिकार

रहा है। जो हर कुछ वर्ष पर सतह पर परिलक्षित होता है, जैसे 1997 का एशियान टाइगर का ढहना, डॉटकॉम बुलबुले का फूटना, सबप्राइम मार्केट का डूबना आदि। 1973 के बाद से हो रही लगातार मन्दी तथा 2007 की भयावह मन्दी के कारण तमाम पूँजीपति वर्ग अपनी मन्दी का बोझ अलग-अलग नीतियों एवं नियमों के नाम पर मज़दूर तथा मेहनतकश वर्ग पर डालता है। सामाजिक खर्च में कटौती, नौकरियों की कमी और नौकरियों में छँटनी जैसी चीज़ें शुरू कर दी जाती हैं।

आज की तमाम शिक्षा व्यवस्था, दुनिया में बेरोज़गारी एवं भुखमरी आदि का आँकड़ा पेश करते हुए उन्होंने पूँजीवाद की नग्न असलियत सामने रखी। यह एक व्यवस्था से पैदा हुई स्थिति है, जिसका प्रस्थान बिन्दु है - मुनाफ़ा। जिसमें हर आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक गति के केन्द्र में मुनाफ़े की एक अन्धी हवस होती है। आज सवाल इस व्यवस्था का ही एक क्रान्तिकारी विकल्प पेश करने का है और सोवियत संघ पहला ऐसा देश था जिसमें ऐसे प्रयोग किये गये, जहाँ सुधारवाद के जरिये नहीं बल्कि क्रान्तिकारी रास्ता अख्तियार कर यह दिखाया गया कि पूँजीवाद से बेहतर विकल्प है मानवता के पास!

आज के पूँजीवाद की स्थिति यह है कि उसे खुद के खड़े किये गये पूँजी के संकट को समझने के लिए भी मार्क्स की 'पूँजी' की ज़रूरत पड़ रही है। बर्लिन दीवार के गिरने के समय का विजयवाद

अब संशयवाद में बदल चुका है। यह मरणासन्न परजीवी व्यवस्था आज संसार को केवल विनाश, युद्ध या पर्यावरणीय विभीषिका दे सकती है। इसलिए आज यह और भी आवश्यक हो गया है कि हम और ज़ोर-शोर से समाजवाद की बात लोगों तक पहुँचायें। इसी लिए बोलशेविक क्रान्ति को याद करना कोई रस्म अदायगी नहीं बल्कि एक ज़रूरत है।

सोवियत संघ, जहाँ विचारधारा और संगठन, दोनों मौजूद थे, दुनिया का पहला ऐसा देश बना जहाँ मज़दूर वर्ग ने अपने हाथ में सत्ता ली और "ज्ञानी" लोगों से ज़्यादा बेहतर चलाया। यह पहला ऐसा देश बना जिसने भुखमरी, बेघरी, बेरोज़गारी को पूरी तरह से खत्म कर दिया। कुछ ही वर्षों में इसने जीवन के हर क्षेत्र में चमत्कारिक उपलब्धियाँ हासिल कीं। सोवियत समाजवाद के प्रयोगों ने 40 वर्षों में ही रूस को मध्ययुगीन पिछड़ेपन, बर्बरता और ग़रीबी की गर्त में पड़े एक देश से दुनिया की सबसे तेज़ बढ़ती और दूसरी सबसे बड़ी औद्योगिक शक्ति में तब्दील कर दिया। इतने कम समय में इसने ऐसा सफ़र तय किया जो पूँजीवादी देश जैसे अमेरिका, ब्रिटेन आदि 200 सालों में हासिल नहीं कर पाये। ऐसे कई और उदाहरण उन्होंने आँकड़ों के साथ साझा किये तथा सोवियत समाज की उपलब्धियों के बारे में लोगों को अवगत कराया।

इसके साथ ही उन्होंने बताया कि कैसे आज पूँजीवाद के भाड़े के

कलमघसीट लेखक समाजवाद की अव्यावहारिकता व इतिहास के अन्त की घोषणा कर रहे हैं व इस पर दर्जनों पुस्तकें लिख रहे हैं। लेकिन इन सबके बावजूद इनका डर समाप्त नहीं हो रहा है। क्योंकि सोवियत समाजवाद ने पुरजोर तरीक़े से यह दिखा दिया था कि दुनिया की बहुसंख्या को ग़रीबी, बेरोज़गारी, भुखमरी, भूख, युद्ध और तबाही की नेमतें देने वाली पूँजीवादी व्यवस्था का बेहतर विकल्प बिल्कुल सम्भव और व्यावहारिक है। आगे उन्होंने समाजवाद और साम्यवाद का ज़िक्र करते हुए दोनों के बीच के अन्तर को समझाया। समाजवाद वह दौर होता है जहाँ पूँजीवादी पुनर्स्थापना की सम्भावनाएँ बनी रहती हैं। जबकि साम्यवाद समाजवाद की अन्तिम मंजिल है। समाजवादी संक्रमण की शुरुआत होना यह निश्चित नहीं करता कि साम्यवाद तक संक्रमण पूरा होगा ही। समाजवाद में शारीरिक और मानसिक श्रम, नगर और गाँव तथा कृषि और उद्योग के बीच का फ़र्क़ मौजूद रहता है। मूल्य का नियम मौजूद रहता है।

उन्होंने सोवियत संघ में की गयी ग़लतियों की तरफ़ इंगित किया और सांगठनिक एवं सैद्धान्तिक दोनों कमियाँ बतायीं जिनके कारण सोवियत संघ में पुनः पूँजीवाद की स्थापना हुई। साथ ही लोगों की समाजवाद को लेकर ग़लत अवधारणा, जो लोग ग़लत स्रोतों से जानने के कारण या पूरी जानकारी न मिल पाने के कारण पाल लेते हैं, पर प्रकाश भी डाला।

अन्त में अभिनव कहा कि इक्कीसवीं सदी में जो भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं उन्हें समझना, इन 100 सालों में वस्तुगत वर्ग-शक्ति सन्तुलन में आये फ़र्क़ को समझना बहुत ज़रूरी है। 1917 के रूस तथा 2017 के भारत और भारत जैसे तमाम देश जो आने वाली क्रान्ति का झंझा केन्द्र बन सकते हैं, इन देशों में व्यापक तौर पर इस दिशा में काम किये जाने की भी बहुत आवश्यकता है। आज ज़रूरत है अक्टूबर क्रान्ति से शिक्षा ली जाये और भविष्य की परियोजनाएँ गढ़ी जायें। आज के दौर में होने वाली क्रान्तियाँ न केवल पूँजीवाद विरोधी अपितु साम्राज्यवाद विरोधी भी होंगी, यानी ये नयी समाजवादी क्रान्तियाँ होंगी। इसके कन्धे पर सर्वहारा पुनर्जागरण व प्रबोधन का भी कार्यभार होगा। आज क्रान्तिकारी वाम ग्रुपों को भी पुराने पड़ चुके कार्यक्रमों से चिपके रहने की कूपमण्डूकता से भी निजात पाना होगा।

पूरे व्याख्यान में नौजवानों को विशेष रूप से सम्बोधित किया गया। इसमें उनकी भागीदारी भी काफ़ी सकारात्मक रही। व्याख्यान के बाद एक संवाद सत्र का भी आयोजन किया गया, जिसमें नौजवान साथियों ने अपने-अपने प्रश्न पूछे। व्याख्यान में अजय सिन्हा, अनीश अंकुर, अनिल रॉय, अशोक सिन्हा, नन्दकिशोर सिंह सहित अनेक बुद्धिजीवी, राजनीतिक कार्यकर्ता और संस्कृतिकर्मी भी उपस्थित रहे।

- बिगुल संवाददाता

प्रस्तावित कॉन्ट्रैक्ट फ़ार्मिंग क़ानून

छोटे व सीमान्त किसानों को उजाड़ने और कृषि के पूँजीवादी विकास की रफ़्तार तेज़ करने की दिशा में एक और क़दम

मुकेश असीम

फ़रवरी 2017 के बजट में की गयी घोषणा के मुताबिक़ किसानों और कृषि उद्योगों के आपसी सम्बन्धों को गहरा करने हेतु केन्द्र सरकार के कृषि मन्त्रालय ने 23 दिसम्बर को कृषि उत्पादन और पशुपालन में कॉन्ट्रैक्ट फ़ार्मिंग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न राज्यों द्वारा बनाये जाने वाले क़ानून का एक मॉडल मसौदा प्रस्तुत किया है। इस प्रस्तावित क़ानून का मुख्य प्रावधान है कि किसान अपनी ज़मीन के मालिक रहते हुए समूहबद्ध होकर उत्पादक संघ या कम्पनी बना सकेंगे। ये संघ कृषि माल क्रेताओं से सीधे अग्रिम विक्रय करार कर सकेंगे, उन्हें मण्डियों/कृषि उपज समितियों के ज़रिये सौदा करना ज़रूरी नहीं होगा। ख़रीदारों के अतिरिक्त क़र्ज़ देने वाले बैंक, बीमा कम्पनी, अन्य कृषि सम्बन्धित कम्पनियाँ भी इस करार में भागीदार बन सकेंगी। यह व्यवस्था फ़सलों, पशु-मुर्गी-मछली-सूअर, आदि पालन, मधुमक्खी, रेशम, वन उत्पादों, आदि विभिन्न कृषि सम्बन्धी उद्योगों पर लागू होगी। माल क्रेता करार की शर्तों के अन्तर्गत उत्पादन प्रक्रिया में भी हिस्सेदारी और बीज, खाद, तकनीकी, यन्त्रों, प्रबन्धन, आदि की आपूर्ति कर सकेंगे अर्थात् मालिकाना के बग़ैर पूरी प्रक्रिया को अपने हाथ में ले सकेंगे। कृषि आदि उत्पादों की प्रोसेसिंग (शोधन और प्रसंस्करण) - चाहे हाथ से हो या मशीनों, रसायनों, आदि से - भी इसके अन्तर्गत आयेगी अर्थात् खेत में उत्पादन से कृषि और कृषि सम्बन्धित उद्योगों के उत्पादों के उपभोक्ता तक पहुँचने तक होने वाली सारी प्रक्रियाएँ। इन करारों के तहत कृषि उत्पादों की ख़रीदारी/व्यापार करने वाली कम्पनियों पर उत्पादों के स्टॉक, आदि की मौजूदा सीमाएँ आयद नहीं होंगी। इन करारों का पंजीकरण और इन्हें लागू कराने, सम्बन्धित विवाद निपटाने, नियम-प्रक्रियाएँ बनाने हेतु राज्य नियामक संस्थाएँ भी बनायेंगे जो इन करारों पर 0.3% तक शुल्क वसूल सकेंगी।

इस मसौदे को तैयार करने वाली कमिटी ने इसके मक़सद और वजहों को भी स्पष्ट किया है। इसके अनुसार देश के 12 करोड़ किसान परिवारों में 86% छोटे (2 हेक्टेयर तक ज़मीन) तथा सीमान्त (1 हेक्टेयर तक) हैं और औसत किसान के पास 1.1 हेक्टेयर ज़मीन है। कृषि जोत के छोटे आकार ने इनके अस्तित्व को ही सन्देहास्पद बना दिया है क्योंकि इनकी उत्पादकता और कुशलता बहुत कम है। जब तक खेती का मूल चरित्र मात्र किसान परिवार की गुज़र-बसर था, उसके उत्पाद उनके उपभोग की ज़रूरतों को पूरा कर देते थे और बहुत कम अधिशेष उत्पाद ही माल के रूप में बाज़ार में आता था, तब तक उत्पादकता और कुशलता का

सवाल ज़्यादा अहमियत नहीं रखता था। किन्तु आज अधिकांश कृषि उत्पादों का बाज़ार विक्रय वाले अधिशेष का अनुपात निरन्तर बढ़ रहा है और किसान परिवारों की खेती के उत्पाद से पूरी न होने वाली उपभोक्ता आवश्यकताएँ भी लगातार बढ़ती जा रही हैं। इसलिए कृषि जोत की उत्पादकता, कुशलता और लाभप्रदता का सवाल महत्वपूर्ण हो गया है।

मसौदे में आगे कहा गया है कि कृषि लागत और मूल्य आयोग के अनुमानों के अनुसार उत्पादन लागत साल दर साल बढ़ रही है जिससे किसानों की शुद्ध आय पर नकारात्मक असर पड़ रहा है। इसलिए कृषि में निवेश और उत्पाद के बेहतर प्रबन्धन की आवश्यकता है, जिसका मुख्य निर्धारक उत्पादन/परिचालन का पैमाना है। अगर मालिकाना समाप्त किये बग़ैर ही छोटे व सीमान्त किसानों की जोतों को परिचालन की एक सामूहिक इकाई में जोड़ दिया जाये तो बड़े पैमाने के उत्पादन से होने वाली किफ़ायत का फ़ायदा उठाकर उनकी उत्पादकता और आय को बढ़ाया जा सकता है, जिसके लिए करार आधारित खेती या कॉन्ट्रैक्ट फ़ार्मिंग एक बेहतर उपाय है।

हालाँकि इस मसौदे में बाज़ार भाव के जोखिम को कम करने हेतु व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से किसानों द्वारा प्रायोजक या उत्पाद क्रेता के साथ उत्पादन पूर्व मूल्य करार को इस क़ानून का मुख्य आधार बताया गया है, इस क़ानून के वास्तविक प्रावधान इससे कहीं अधिक व्यापक हैं। इस करार के अन्तर्गत प्रायोजक माल ख़रीदार तकनीक, कृषि पद्धति, फ़सल सम्बन्धी सभी आवश्यक यन्त्र, बीज, खाद जैसी आवश्यकताएँ व सेवाएँ और पेशेवर प्रबन्धन भी प्रदान कर सकता है। संक्षेप में कहा जाये तो एक पूर्व निश्चित रकम के बदले में वह पूरे कृषि कार्य का संचालन अपने प्रबन्धन में सँभाल ले सकता है।

इस बात से तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि छोटे और सीमान्त ही नहीं बहुत से मँझोले किसानों द्वारा की जाने वाली खेती भी आज पूरी तरह घाटे का सौदा है क्योंकि उनके उत्पादन की ऊँची लागत कृषि उत्पादों की बाज़ार क्रीमतों से अधिक पड़ती है। इसका कारण छोटे पैमाने के उत्पादन में प्रति इकाई अधिक श्रम का उपयोग, ज़रूरत के वक़्त ट्रैक्टर आदि यन्त्रों को ऊँचे भाड़े पर लेने की मज़बूरी और कम मि़क़दार में उत्पादन सामग्री ख़रीदने पर ऊँचे दाम अर्थात् कम पूँजी से पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था में होने वाले सभी नुक़सान शामिल हैं। इसका नतीजा छोटे-सीमान्त किसानों के भारी क़र्ज़ में डूबने, उनके जीवन में भारी दुःख-तकलीफ़ और नतीजतन बढ़ती आत्महत्याओं के रूप में हम सबके सामने हैं। लेकिन क्या यह करार

आधारित खेती इसका कोई समाधान प्रस्तुत कर सकती है?

भारत में अभी सामन्ती कृषि (अधिशेष सामन्ती शोषकों को सौंप बचे हिस्से से जीवनयापन करने के लिए उत्पादन) नहीं है। यहाँ कृषि में माल उत्पादन अर्थात् बाज़ार में विनिमय के लिए उत्पादन ही प्रभावी है और विनिमय में प्राप्त धनराशि से ये किसान बाज़ार से उपभोग के लिए अन्य ज़रूरी माल ख़रीदते हैं जो पूँजीवादी उत्पादन पद्धति का आधार हैं। लेकिन भारतीय राज्य ने कृषि में उत्पादन के जैविक संघटन में पूँजी निवेश की गति को नियन्त्रित रखा है क्योंकि वह बड़े पैमाने के उत्पादन द्वारा कृषि की ज़रूरतों के लिए फ़ालतू हुई श्रम शक्ति को उद्योगों में खपा पाने की क्षमता नहीं रखता था। इसलिए छोटे पैमाने का कृषि उत्पादन अभी भी बहुत व्यापक है यद्यपि यह किसानों के बड़े हिस्से के लिए कंगाली का ही उत्पादन करता है क्योंकि छोटी पूँजी वाला उत्पादक बड़ी पूँजी वाले उत्पादक के मुकाबले अधिक लागत पर उत्पादन करता है और हानि में रहता है, यह हानि का नतीजा उसे खुद अपने श्रम की क्रीमत भी न मिल पाने में अभिव्यक्त होती है। इसलिए बड़ी संख्या में सीमान्त किसान परिवार आज पूरी तरह श्रमिक बन चुके परिवारों से भी अधिक कंगाल हैं। ऐसे भी देखें तो अर्थव्यवस्था के 12% उत्पादन में 45% जनसंख्या लगी हो तो उसके हिस्से कंगाली के सिवा क्या आ सकता है। फिर छोटे पैमाने पर उत्पादन के कारण भारत में कृषि की उत्पादकता बहुत कम है - वैश्विक स्तर पर उत्पादन की आधी-तिहाई या और भी कम। इसी वजह से पिछले सालों में कृषि से पलायन तेज़ हुआ है।

पर नियन्त्रित गति के बावजूद भी कृषि में पूँजी निवेश और यन्त्रीकरण की प्रक्रिया निरन्तर तेज़ हुई है - कृषि अब पारिवारिक श्रम और हल-बैल पर

आधारित नहीं है। दूसरे, सभी किसानों के लिए खेती अलाभकारी नहीं है। धनी किसानों द्वारा पूँजी निवेश और यन्त्रों के उपयोग से बड़ी जोतों पर की जाने वाली खेती बड़े पैमाने के उत्पादन की किफ़ायत और प्रति इकाई उत्पादन की कम लागत के कारण लाभप्रद है। इसीलिए बड़े भूपतियों, अमीर किसानों के साथ ही ज़मीन की क्रिस्म, सिंचाई, अन्य संरचनात्मक सुविधाओं, आदि की उपलब्धता के आधार पर प्रति हेक्टेयर 60 हजार से सवा-डेढ़ लाख रुपये प्रति वर्ष पर ज़मीन किराये पर लेने वाले ग्रामीण कृषि व्यावसायियों का एक वर्ग भी अस्तित्व में आया है। यह तबक़ा श्रमिकों की श्रम शक्ति ख़रीद कर लाभप्रद खेती करता है, साथ ही छोटे-सीमान्त किसानों और बाज़ार के बीच का बिचौलिया बनकर भी लाभ कमाता है; सरकारी समर्थन मूल्यों का लाभ भी यही तबक़ा लेता है (हाल की रिपोर्टों के अनुसार किसानों का मात्र 5-6% हिस्सा ही सरकारी न्यूनतम समर्थन मूल्य का प्रयोग कर पाता है)।

अब भारतीय पूँजीवादी राज्य छोटे-सीमान्त किसानों को ज़मीन के मालिकाने को छोड़ पाने के सांस्कृतिक प्रतिरोध को बाईपास करके इस पहले ही धीमी गति से परन्तु निरन्तर जारी प्रक्रिया को तेज़ और औपचारिक बनाने के लिए क़ानूनी प्रावधान कर रहा है। इन करारों के अन्तर्गत होने वाली कृषि प्रभावी रूप से व्यवसायी कॉर्पोरेट खेती ही होगी जिसमें इन छोटे ज़मीन मालिकों को ज़मीन का कुछ किराया ही प्राप्त होगा या खुद श्रम शक्ति बेचने पर मज़दूरी भी। लेकिन अधिक पूँजी निवेश और उन्नत यन्त्रों के प्रयोग से श्रम शक्ति की ज़रूरत भी बहुत कम हो जायेगी तथा ये मुख्यतः अन्य उद्योगों में श्रमिक बनने के लिए मुक्त हो जायेंगे।

इस प्रकार कृषि में भी उत्पादन के सामाजिकीकरण का दरवाज़ा पूरी

तरह खुल जायेगा, पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के नियम से कृषि में भी पूँजी और उत्पादन का केन्द्रीकरण तेज़ होगा तथा वर्ग विभाजन स्पष्ट हो जायेगा। पूँजी निवेश और उन्नत तकनीक के उपयोग से उत्पादकता तो बढ़ेगी किन्तु उसी से अति उत्पादन और संकट के दौर भी आयेंगे; और हर दौर में तुलनात्मक रूप से छोटे उत्पादकों के विनाश के द्वारा और अधिक इजारेदारी स्थापित होगी जैसे आज अमेरिका में 200-400 एकड़ वाले पारिवारिक किसान भी बड़े पैमाने पर औद्योगिक कृषि के आगे बरबाद हो आत्महत्या कर रहे हैं।

इस प्रकार बड़े पैमाने पर छोटे, सीमान्त एवं मँझोले किसानों का सर्वहाराकरण होगा। गाँवों से धनी किसानों और एग्रो बिज़नेस द्वारा इनका बलपूर्वक उजाड़ा जाना एक बेहद दर्दनाक और तकलीफ़देह प्रक्रिया होने वाली है। मगर पूँजीवाद में समाज के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया तो यही है - उत्पादन के सामाजिकीकरण-केन्द्रीकरण द्वारा किसानों के सर्वहाराकरण का मुकाबला पीछे जाकर छोटे पैमाने के कुटीर उत्पादन की रूमनियत में नहीं बल्कि आगे बढ़कर निजी सम्पत्ति के उन्मूलन और सामूहिक स्वामित्व में सामूहिक आवश्यकताओं के लिए उत्पादन की समाजवादी व्यवस्था में ही है जिसमें कृषि भूमि का राष्ट्रीयकरण कर सामूहिक और राजकीय खेती की व्यवस्था स्थापित कर पूरे समाज की आवश्यकता के लिए उत्पादन होगा। गाँवों से उजाड़े जाते इन किसानों को अपने हित खुद को सिर्फ़ कंगाली की ज़िन्दगी देते ज़मीन के छोटे टुकड़ों में नहीं बल्कि मज़दूर वर्ग के साथ मिलकर निजी स्वामित्व की पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में देखने होंगे।

कार्टून कोना

